







# लेखक की बीबी

लेखक—

श्री सरयूपण्डा गौड़

---

भूमिका लेखक—

श्री कृष्णदेव प्रसाद गौड़ एम० ए०, एल० टी०  
( बेढब बनारसी )

---

प्रकाशक—

चौधरी एराड सन्स

पुस्तक विक्रेता तथा प्रकाशक

बनारस—१

मूल्य दो रुपया चार आना



प्रकाशक  
चौधरी एण्ड सन्स,  
बनारस—१

द्वितीय संस्करण जून १९६३

मुद्रक —  
राष्ट्रभाषा मुद्रणालय,  
लहरीतारा, बनारस—४

## समर्पण

सकल गुण गरिष्ठ, गुणी, गुण पारखी,  
सहृदय सज्जन, विद्या व्यसनी  
रूपपुराधीश ।

श्रीमान् महाराज कुमार, रायबहादुर  
बा० शारदाप्रसाद सिंह जी साहेब ।  
( श्री० बा० हीराजी साहेब )  
के

करकमलों में सादर सलंभ्रम  
समर्पित

सरकार !

अपने वनस्पति जीवन की जलती हुई लीपों में, अपने हुए क्षणों में, आपने शान्त स्थान पर एक पत्र लिखा है। इस पत्र की दया द्वारा, आपके इस पुनर्जित भिक्षुक को जो कुछ भी हास और आनंद की छाया प्राप्त हुई, श्रीमान् के कृपाशून्य की सुप्राप्ति के कारण है। हाहाकार के साथ ही मैं कहता हूँ मेरी यह श्रुति नगण्य सेवा आपसे कृतज्ञ श्रीमान् के नित्य कथारि लों, परन्तु मुझे श्रीमान् के लगे लगे के जीवन की अमर विद्यावता, आप उदास्ता जात है और मैं अब देव-दुर्लभ जीवन की अमर कृपावता से ही लाभान्वित होने की वासना है यह कृपावता करने में सक्षम हो गया है।

श्रीमान् की कृता पर मुझे विश्वास है और श्रद्धा है श्रीमान् आपने इस पुनर्जित भिक्षु की कृता कृता की यह भाषा करके अत्यन्त अपना कर मुझे कृतज्ञ करने ।- इत्यन्तम्

कृतज्ञ-श्रीमान् के ही प्रिय सम्बोधन में—

पंडा ।



## एक क्षण

यह कहानियाँ हैं, और हास्य-रस की, जरा मुलाहिजा फरमाइये मेरे दुस्साहस की ? एक तो कहानी लिखना ही कठिन काम है । फिर हास्य-रस की कहानी, और वह भी लिखी जावे मुक्त जैसे अनाड़ी की कच्ची कलम से ? मूढ़ मसक का मन्दराचल मसल डालने का उपहासास्पद विफल प्रयास ! निरर्थक चेष्टा ! न तो मैं कहानी लेखक ही हूँ, न कोई काबिल कला-कुमार । हाँ कुछ लिख मारने की अपनी इश्की, खुराफाती घुन में यह तूफाने-बदतमीजी बरपा कर रहा हूँ ।

और मुझे आशा है, हमारी इस पुस्तक की सुन्दर ( ? ) शब्द योजना, गुद्गुदाने वाले भाव-भाषाओं को ठूँस मारने की मेरी चेष्टा यदि आपको न हँसा सकी, तो इसके भोड़े भाव, बेतुके वाग्जाल जो इस पुस्तक की पंक्ति-पंक्ति में पिराये मेरी मूर्खता और मेरी अनधिकार चेष्टा का डक्का पीट-पीटकर अपना सिर घुन रहे हैं, वे आपको हँसाये वगैरे न छोड़ेंगे ।

हँसिये आप ! चाहे हमारी बुद्धिमानी पर या नादानी पर ? आपके होटों पर, जिसे इस द्रन्दमयी दुनियाँ ने अपने कूर निर्मम थप्पड़ों से मार-मारकर रेगिस्तान बना रखा है—कुछ काल भी हास्य की मृदुल मंजुल-रेखा अङ्कित हो गयी तो मेरा धन्य भाग ! बस एकमात्र आपको, एक क्षण भी हँसा देने के लिये ही तो मैंने यह “भानमती का कुनवा जोड़ा है ।”

इस तुच्छ पुस्तिका की भूमिका लिखने का घोर कष्ट उठाकर इसे गौरवान्वित करने वाले मेरे कृपालु प्रिय मित्र तथा हास्य-रस के माने परम सुयोग्य सुलेखक श्री भाई कृष्णदेव प्रसाद गौड़, जिनका सरस हृदय मानिन्द मक्खन के मुलायम—नाजनिशों-सा नाजुक और कुसुमकोमल कुमारियों की कामनाओं-सा परम मधुर तथा तरल भावुक है—को हम दोनों हाथ उठाकर घोर “जय-जय-कार” करते हैं—“भाई मेरे दूधो नहाव ! पूतों फलो !” और इसके सिवा मेरे पास है ही क्या ! क्योंकि जब ब्रह्मा बाबा ने ब्राह्मणों को अपने ब्रह्मलोक से वसुन्धरा पर “डिस्पैच” किया तो उनके भोले में सिर्फ “जय जय-कार” का ही खजाना टूँस मारा ।

ब्राह्मण तो जन्म के ही भिन्नुक उहरे और इस घोर कलिकाल में तो उनकी भिन्नुकता, छायावादी कवि-कुल कुमारों के असीम प्रीतम की निस्सीमता को भी परास्त कर चुकी है, अतः हम अपने उसी जन्मानन्द अधिकार के द्वारा अपने इस अक्षम्य अपराध, भयंकर दुरसाहस के प्रति आपके उदार-द्वार पर दण्ड-नादिरूप प्राप्ति की लास्याशित-बालता से राह-खह / नडा रहे हैं—

“तेरा जीयेगा लाल लाला, चागल भर भर दे !”

अब आइन्दे मारजी आनकी !

आगका ही-भिन्नक

मरसु पकड़ा गौड़

## भूमिका

रोना और हँसना मनुष्य का स्वभाव है, रोदन तो पशुओं में भी देखा गया है, मार पड़ने पर, मालिक के नाराज होने पर, विशेष शारीरिक अथवा मानसिक कष्ट होने पर, पशुओं के नेत्रों से भी आँसुओं की धारा बहते हुए दीख पड़ी है। किन्तु अभी तक इस बात का पता नहीं लगा है कि जानवरों में हास्य का भी उद्भव होता है। यह मनुष्य की विशेषता है। स्वस्थ मनुष्य के लिये हँसी अनिवार्य है, यह आवश्यक ही शारीरिक अथवा मानसिक दृष्टि से स्वास्थ्य है।

जिस प्रकार किसी को रुलाने के लिये अनेक साधन हैं, उसी प्रकार हँसने के लिये भी अनेक साधन हैं। पर भी रुला देना सरल है, हँसाना कठिन। रोना और हँसना दोनों शरीर की क्रियाएँ नहीं हैं। एकका सम्बन्ध मन से है। कोई कलाकार यदि ऐसी कृति का निर्माण करना चाहता है जिससे मनुष्य के मुख पर हास्य का प्रदर्शन हो तो उसे अपने पाठक अथवा दर्शक के मन को ऐसी अवस्था में लाना पड़ता है जिससे हँसी आ जाय।

हसी की कहानों, व्यंग चित्र, हास्य की कविता सभी का श्रेष्ठ हँसना होता है। इसलिये सभी में प्रत्यक्ष अथवा परोक्षरूप से मनुष्य की उस मनोवृत्ति को लाने का प्रयास किया जाता है जिसके द्वारा हँसी उत्पन्न होती है। यद्यपि उत्तम रचना वही मानी जाती

है जिसमें हास्य का मसाला परोक्षरूप से एकत्रित किया हो। यह किसप्रकार से हो सकता है यहाँ पर बताने का विषय नहीं है और अत्येक लेखक की अपनी अलग कला होती है। कोई अतिशयोक्ति से काम लेता है, कोई व्यंग का प्रहार करता है, कोई अवसर-विशेष से लाभ उठाता है, कोई भाषा की रचना ऐसा करता है जिसे पढ़ने से हँसी आजाय। और भी कई ढङ्ग से विनोद की सामग्री एकत्र हो सकती है। केवल भाषा के आधार पर जो विनोद पैदा किया जाता है वह जैँची श्रेणी का नहीं होता। विशेषतः हिन्दी में हास्यरस के लेखकों की भाषा उतनी परिमार्जित नहीं है कि धाराप्रवाह श्लेष अथवा चमत्कारिणी भाषा का प्रयोग कर सकें। मार्क ट्वेन अथवा बुडहाउस की भाँति भाषा की खूबी के साथ हास्य की रचना करनेवाले हिन्दी में देखने में नहीं आते। हमने विचश होकर अँग्रेजी लेखकों के नाम लिये हैं। पर क्या करें? यह मानना ही पड़ेगा कि हमारे यहाँ हास्य लिखने की प्रथा बिल्कुल नयी है। प्राचीन साहित्य में केवल नाटकों में निदग्न, हास्य की सामग्री प्रदर्शित करते हैं या रीति रीतों में उदाहरण के रूप में कवि लोग हास्यरस की रचना करते हैं। हिन्दी में भी वही परिपाटी चली आयी है, और पुरानी हिन्दी का हास्यरस की काव्यता प्रायः भड़ोवा है।

यह अच्छी जमीन देखकर हिन्दी लेखकों ने इधर धावा बोल दिया। कहीं कोई अकबर बन रहा है, कहीं कोई डिक्सेस बन रहा है, कोई योलियर बन रहा है और कोई मार्क ट्वेन बन रहा है। कुछ हममें ऐसी कमजोरी आगयी है कि जबतक हम अपने को किसी विदेशी से तुलना न कर लें, तबतक हम अपने को हेय समझते हैं। कालिदास बेचारे को शंखसपथर बनना पड़ा और वाल्मीकि को होमर बनाकर लोगों में छोड़ा। बनने को तो लोग बन गये

परन्तु न तो किसी में मार्कट्वेन की रूह की छाया पड़ी, न तो मोलियर की महत्ता को कोई पा सका। 'वह भड़ से गिर पड़ा' 'सड़ से उड़ गया' कोई हास्य नहीं है। महफिल में भाँड़ हँसा दिया करते हैं परन्तु वह रुचि नीचे दर्जे की है और बासकों के लिये ठीक होती होगी। मनोवैज्ञानिक ढङ्ग से हास्य लिखने में हिन्दी में कम लोग सफल हुए हैं।

उसका कारण यह है कि हास्य का पौधा वहीं पनपता है जहाँ का समाज मनोरञ्जन को बुरा नहीं समझता। कुछ आर्थिक कारणों से, कुछ धार्मिक कारणों से गम्भीरता का पट्टा भारतवर्ष में ऊँचा लपका जाता है। दिल खोलकर हँसना पाप नहीं तो अशिष्टता तो जरूर है। बड़े बड़े के सम्मुख नहीं हँस सकते क्योंकि यह शिष्टाचार का सामा को उलट्टान करना है, बड़े छोटे के सामने नहीं हँस सकते क्योंकि यह एक अनुचित उदाहरण होगा। लियों और बालिकाओं के मुख पर तो १९४५ धारा बड़े जोरों से लगी है। उनका हँसना तो सरासर निर्दोषता है। जिस समाज में हास्य पर इतना प्रतिबन्ध हो वहाँ हँसा का रचना कैसे हो सकती है। आजकल तो लोगों की परीयों हँसी का दवायें हुए हैं, पुराने समय में धार्मिक पीड़न और अत्याचार हँसी को रोक हुए थे। पश्चिम के निवासियों ने अपना जीवन ऐसा बना लिया है कि उन्हें सारे झंझटों के रहने पर भी मनोरञ्जन के लिये समय है। उनके क्लब में, होटल में, मित्रमण्डलों में, हँसी का पर्याप्त सामान रहता है। साने के बाद, हँसने काग्री कहानियाँ कहाँ आती हैं। व्याख्यानों में निन्दा करने का खेड़ा भी आता है। बात बात में निन्दा का स्थान ऊँचा होता है।

हिन्दी साहित्य में अनेकों साहित्य के अध्ययन ने इस और उत्तेजना पैदा की है। बाबू काल मुकुन्द गुप्त और परिद्धत प्रताप



नारायण मिश्र के पहले, केवल भारतेन्दु बाबू ही ऐसे थे जिन्होंने इस ओर कुछ अधिक ध्यान दिया था। क्योंकि उनका जीवन सहृदय था। शुष्क कपाटवत् रहने वाले जिनके चेहरे पर मुरदनी की गम्भीरता छाई रहती है, वह हास्यरस की महत्ता को समझ सकते हैं। गुप्त जी और मिश्र जी ने बड़ी सुन्दर भाषा में लेख लिखे हैं। हास्य और विनोद की बड़ी अच्छी सामग्री उन्होंने हिन्दी में लिखी है। इनके पीछे कभी-कभी किसी ने फुटकर कविता लिख दी अथवा एकाध छोटा मोटा लेख लिख दिया। अकबर की रचनाओं ने हास्य और व्यंग की कविताओं की ओर लोगों को खींचा और मतवाला ने विशिष्ट रूप से इस ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया। मतवाला के पहले, परिडित ईश्वरी प्रसाद शर्मा ने आरा से मासिक मनोरञ्जन निकाला था, उसमें भी हास्य रस की सामग्री रहती थी किन्तु गौणरूप से। फिर तो हिन्दू पंच, भाँड़, भूत, मौजी, खुदा की राह पर इत्यादि अनेक पत्र निकले और इधर लोगों की रुचि होने लगी। अब तो प्रायः पत्रों में इसके लिये एकाध कालम रहने लगे हैं—

कहानियों में तो इस ओर सबसे पहले गोंडा निवासी श्री गङ्गा प्रसाद श्रीवास्तव ने ही कलम उठाया था। उनकी लम्बी दाढ़ी सबको याद होगी। तब से अनेक हास्य-रस के लेखक हुए और होते चले जा रहे हैं। ग्रन्थ पुस्तक भी हास्यरस की कहानियों का संग्रह हैं। उसके लेखक परिडित सरयू परदा गोड़ हैं। हास्य-रस के लेखक को कैसा हँसना चाहिये उसके सर्वथा अनुरूप परदा जी हैं। आप घर के अच्छे हैं और रोटी की चिन्ता से मुक्त हैं। हिन्दी लिखना केवल आपका शौक है, व्यवसाय नहीं। हमारे देश में जबतक लेखकों का उचित सम्मान न हो, और उनकी आर्थिक अवस्था ठीक न हो तबतक सम्भव लेखक ही कम से कम हास्य-रस

की उत्तम रचना कर सकते हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि पण्डा जी सहृदय व्यक्ति हैं। एक साहित्यकार के लिये सहृदयता उतनी ही आवश्यक है जितनी मोटरकार के लिये पेट्रोल।

इस संग्रह में जितनी कहानियाँ हैं सभी अच्छी हैं, फिर भी मुझे जो पसन्द आयी हैं उनका उल्लेख मैं कर देना आवश्यक समझता हूँ। “आँखों की प्यास” बड़ी कलापूर्ण कहानी मुझे जैची। एक तनिक-सी बात को लेकर लेखक ने ऐसी कलम चलायी है कि पढ़कर जो प्रसन्न हो जाता है। “चोट” नाम की कहानी भी अच्छी उतरी है। “होली की हजामत” गाँवों का वास्तविक चित्रण है जिसे विनोद के साँचे में ढाल दिया गया है। “दिल्ली” नाम की कहानी भी बहुत अच्छी है। जरा एक जगह कुछ भिन्नक आती है। नहीं तो बड़ी अच्छी कल्पना की गयी है। पहली कहानी “लेखक की बीबी” हिन्दी लेखकों की आर्थिक अवस्था का बड़ा अच्छा व्यङ्ग्य चित्रण है। “कथा वाचक जी” में गाँव के कथक्कों की खूब खबर ली गयी है। पढ़ने में लोगों को कुछ अतिशयोक्ति भले ही मालूम हो, परन्तु मैं जानता हूँ कि ऐसे मूर्ख कथा-वाचक अब भी देश में मौजूद हैं। “प्रणय-प्रतियोगिता” भी लेखक की अच्छी कहानियों में है। “दो सौन्दर्य पारखी” युवा जीवन के एक मार्मिक दृष्टिकोण का सुन्दर हास्य-चित्रण है। “कविता प्रेम और कलाकार” नाम की मजेदार बेगुदरी है। “पत्नी-प्रपञ्च” भी एक प्रकारण्ड त्रिया चरित्र है, जिसमें ‘पति-पत्नि’ में उभय पक्ष से कौशल द्वारा अपने-अपने कार्य सम्पन्न की चेष्टा हुई है, पर विजय, वैजयन्ती पति देवी की ही सुप्राप्त हुई है। इन कहानी में एक अग्रीर उत्सुकता है—और नृशत्रुता का सुन्दर समाया है।

कहानियाँ पाठ्य सभी अच्छी हैं और लोगों को सचिकर जी आवश्यक प्रभाव होगी। पण्डा जी को किसी स्कूल या कॉलेज में

शिक्षा प्राप्त करने का अवसर न मिला, फिर भी आप में लिखने-पढ़ने का व्यसन है, प्रतिभा है। इसीलिये कृत्ति में सफलता मिली है। जिस प्रकार से कुछ सुन्दरियों में एक स्वाभाविक मोलापन होता है, पाउडर, लिपस्टिक और 'हेयरवेव' का प्रयोग नहीं होता और वह दर्शकों के हृदय को जबरदस्ती खींच लेती है, उसी प्रकार परेडा जी ने कला, आदि हास्य की विवेचना नहीं पढ़ी है। बगसों और कोचे से अनभिज्ञ हैं। केवल लिखना चाहिये और लिखने का नशा है, इसलिये लिखते गये हैं। परन्तु रचना में एक मिठास और एक आकर्षण है। भाषा में प्रवाह और भावों में जार है। हमें इस बात की प्रसन्नता है कि हमारी विरादरी में एक और आया।

इस पुस्तक में कुछ दोष भी हैं और उनका उल्लेख न करना उचित न होगा। पहला दोष यह है कि इस पुस्तक की भूमिका लिखाई गयी और उससे बड़ा और दूसरा दोष यह कि मुझसे। यदि भूमिका लिखाना ही था तो किसी दार्शनिक अथवा बड़े लेखक से लिखाना था जिसकी हिन्दी जगत् में तूती बोलती हो। मैं न तो वैज्ञानिक हूँ न विश्लेषणकर्ता। और परेडा जी को इससे यह हानि हुई कि मित्र के नाते मैंने हाथ रोक कर लिखा है। उनकी रचनाओं के प्रति जितना न्याय होना चाहिये मैंने नहीं किया। इसका एक और महा-कारण यह उपस्थित हो गया कि उन्होंने मुझे खासा आर्डर दे रखा कि "देखो मेरी विरुदावली गायन में न उलझना।" इस भूमिका में यदि कुछ उटपटाङ्ग बातें आ गयी हों तो मेरा दोष नहीं है, परेडा जी का, जिन्होंने मुझ जैसे व्यक्ति से इसे लिखवाया।

कृष्णदेव प्रसाद गौड़

तुलसी जयन्ती १९६३

एम० ए०, एल० टी०, विशारद

प्रधान मन्त्री-काशी नागरी-प्रचारणी सभा

## लेखक की बीबी

“अन्धे, बहिरें, कोढ़ी, भूँगे, रोगी, कामी और दरिद्र यानी हर तरह से जो मजबूर से मजबूर हो, बिल्कुल निकम्मे और बेकार हों” ‘बाबा तुलसीदास ‘गोसोआमी’ का कर्मान हम बीबी बननेवाली औरतों पर यह है कि—‘ऐसे पतियों का भी अपमान करनेवाली पत्नीजीवी छी यमपुर में एक नहीं नाना दुःख पाती हैं’—तो हमारे पुष्पी के नर-तनधारी परमात्मा पतिदेव उन्हीं के शब्दों में—“बहुत बड़े आदमी हैं” और बड़प्पन के साथ ही घोर सुख्यात भी । यह दूसरी बात है, कि बड़े आदमियों की तरह न उनकी लाख दो लाख की तर-तहसील है, न उनके पास हवागाड़ियाँ अथवा घोड़ा गाड़ियाँ हैं, बल्कि उनके पास तो एक गधा गाड़ी तक नहीं है, स्टेड तो दूसरी चीज है । यदि उनके कुल दूः दाय के लगे-बीड़े महाभारत में युद्धों सत्रह बार गरत लगाने तो शतपद उन्हें गटर-गटर के छिलके तक बर्बाद न हों ! मगर फिर भी वे नये आदमी हैं ? सर्वज्ञ तो नहीं हैं । ये एक बात ‘भोक्ताजी’ की आशयश, नीची परभावलय के माते नहीं कहनी, बल्कि साथ में अपने परभाव्याभिभूत मनान्तर्बन्धन के शोकसे वे निरक्षरी हुई जाती तो दुःख रही हैं । आगे बड़े फल से हों अपने पैतृक-उत्तर

सुनाया करते—“दौलत बहुत बुरी चीज़ है, सत्पुरुषों ने सर्वथा इनका त्याग ही किया है, पवित्रता स्त्रियों का अलंकार पति-भक्ति है, न कि नाना उपद्रवकारी सोने या चँदी के सेर दो सेर गहने ? महात्माजी ने भी इन्हें त्याग करना ही बताया है। फिर भी पैसा हाथ की मैल है, इसके लिये हाथ-हाथ फिजूल है। सत्य, दया और निष्काम प्रेम ही संसार के सर्वोपरि सुख और आनन्द हैं, सत्कीर्ति ही जीवन है, आदि आदि।” मगर मेरे इन सप्राणपति परमेश्वर के निकट धोविन, भंगिन और कहारिन जब रोती बिलखती, अपने बुखड़े गाती, तलब मँगाने आया करती, तो मेरे ये देवता संसार के सर्वोपरि सुख भोग, सत्य, दया और निष्काम प्रेम की सुधि भूल जाते थे। जहाँ कहारिन ने हौंक लगाई की आप तीन कदम में दरवाजे के पार पहुँच, मुझसे कहते—“कह दो, मालिक घर में नहीं हैं”। बीबी होकर उनका अपमान कैसे करती, पर डरती-डरती इतना जरूर कहती कि “दुष्टों से तो मालिक बाहर हैं”। सुनते-सुनते बिचारी के कान पक गये होंगे पर मेरे देवता तो उस समय अपने संरक्षण-बुर्ग पाखाने के दबाले होते, मेरी सुने कौन ?

हाथ की मैल, नाना उपद्रवकारिणी मुद्रा या दौलत के लिये मेरे प्राणनाथ रोज ही अपने संसार के सर्वोपरि सुख-सत्य, दया और निष्काम प्रेम के सर गिन-गिन कर जूते लगाते, इनकी कपाल-क्रिया करते।

मेरे जीवनधन लेखक थे, जैसे व्यास, वाल्मीकि, कालीदास, भवभूति, शैलपियर, रेनार्ल्ड, टालस्टाय इत्यादि। वे नित्य ही अपनी लौह-लेखनी की नोक से, फुल्लकेप के तख्तों पर काली स्थावियों के राजतिलक लगा, लाखों पथ-भिन्नुओं को एकलुत्र सम्राट बनाकर बिठाते थे, मगर खुद अपने लिये—चार हाथ जमीन के भी सम्राट नहीं बन सके—! सुना है, शिव जी वृक्ष की छाया में रहते हैं, आप भोग, धतूरे खाते हैं, परन्तु दूसरों को बड़े-बड़े महल देते हैं और

## लेखक की जीवी

छुत्तीसों व्यञ्जन खिलाते हैं। मेरे लेखक नाथ, शायद इन्हीं भगवान् भूतनाथ के संसारी संस्करण थे।

सोचते बहुत थे, मगर करते कुछ नहीं थे। कल्पनाओं में उन्हें जितनी आनन्दानुभूति होती थी, व्यवहारिकता में उससे सौ गुने घबड़ाते थे। जब देखो आँखें आकाश में टँगी हैं, सुखड़ा माघ के मेघ की तरह गंभीर है, कान ध्यान की भाँति सज्जा हैं, मानों स्वर्ग से कोई सूचना बेतार के तार से आपके पास आ रही हो। सुना करती हूँ, ४० करोड़ मुसलमानों के नबी हजरत मुहम्मद साहेब के समीप भी मेरे प्राणनाथ की ही भाँति, विहित से पैगामात आया करते थे, मगर उन्होंने तो कुछ किया भी, बेचारे ने आठ-आठ जीवीयों की परवारिश बड़ी खूबी और शान से की, मगर हमारे हृदयेश्वर...? न कहलाइये, यहाँ तो जल ही रही हूँ, मला यमदेव के घर भी तो सुख से बस सकूँ।

मैंने डरते-डरते, बातों में, इशारे से एक दिन कहा भी—यों रात रातभर अगकर डंड और मुण्ड की नसीहत वेमतलब करने से क्या फायदा? यदि मुक्ति और मोक्ष ही सरकार के जीवन का चरम लक्ष्य है, तो जब तक मली तरह आँखें न मुँद जायँ—हरिभजन में रत रहना ही क्या बुरा है इस मुक्त की मजदूरी से?

मेरे प्राणपति को कोई “थॉट” (विचार) मिल गया था। उसे ही वे अपने मस्तिष्क के महा-कौपमार से, अपनी लेखनी द्वारा नॉन खुरच-खुरच कर कामज के पत्रों पर जाना लगाते हैं। पहले उनका क्या नाम हो जाता—! बड़ा नाम हो जाता के जाती वह मर्त, वे एकदा जगन्नाथ नाम, जो कुछ बड़ी आँखों के लपटा है—नरुवर केवान की आँख की मर्त हो जाता। बड़ा नाम हो जाने के जाने वह कि, कनका नाम चारी और हवा की तरह कैम जाता।

मैं समझती हूँ, राम इतना “विश्व नाम” तुम्हें के लिये अगद्वय

उत्सुक तथा लालायित होंगे। मगर मैं तो उनकी बीबी हूँ, मैं उनका नाम कैसे लूँ। कई वर्जित नामों के न लेने में उनका भी नाम शामिल है। मगर मेरे प्राणनाथ के नाम का उपयोग प्रायः लोग किसी की मूर्खता करने पर करते हैं। लिखा जाए तो—“ब” में ह्रस्व उकार और “द” तथा “ध” संयुक्त और दीर्घ उकार। इसमें उन्होंने लेखक होने के बाद “प्रसाद” भी जोड़ लिया है। वस !

सच पूछिये, तो मुझे उनका नाम सख्त नापसन्द है। मैंने कहा भी था, जब कि आजकल नाक और दाँत भी अनुपयुक्त होने पर चिरवा तुड़वा डाले जाते हैं, तो मुए नाम के आपरेशन कराने में क्या दिक्कत ? या इन्हें रद्दीबदल करने में क्या तकलीफ है, जब कि औपन्यासिकों के सम्राट् ने ऐसा उत्तमोत्तम एवं परम सुन्दर आदर्श उपस्थित कर रास्ता साफ ही कर दिया है। मगर उन्होंने मेरी बात पर ख्याल न फरमाया, क्योंकि गोस्वामी जी ने डोल, गँवार और शूद्र में मेरी भी गणना की है। एक गवारिन ‘नार’ की बातों का ख्याल, वे ‘लेखक’ जैसी लम्बी लकड़ से सुशोभित होकर—करने की मूर्खता कैसे करते ?

हाँ, तो घण्टों की प्रतीक्षा के बाद हम पत्नियों के नारायण मेरी और मुखातिब हुये और बोले—‘हरिभजन’ और ‘लेखन’ दोनों एक ही चीज हैं, बल्कि कुछ बढ़कर ही ‘लेखन’ को समझो। क्योंकि हरिभजन तो किसी एक प्राणी विशेष को बैकुण्ठ देता है, पर यह ‘लेखन’ अनेकों नर-नारी को सुख और शान्ति प्रदान करता है। सुख और शान्ति ही तो बैकुण्ठ है। नहीं तो बैकुण्ठ में क्या सितारों का शोरवा, चौदकी चटनी और सूरज का मुखवा थोड़े ही बना मिलता है ?

मैं खिनय बोली—“देव न नरें, इन नैनतारों के नदण का दुर्भाग्य हो ! यदि हमी इन्हें जा जाएँ, तो येनार ‘गह’ ‘कह’ भूखों टापते ही रह जाएँ ! यदि बैकुण्ठ में ये चीजें धर्मात्माओं की खिलाई

जाती, तो मैं पहली स्त्री होती, जो बैकुण्ठ के विरुद्ध 'प्रोपे-गण्डा' करती।”

स्वामी बोले—वहाँ नथिया और झुलनी भी नहीं मिलती।

मैं—न मिले, शान्ति और सुख तो मिलेगा ? बस शान्ति और सुख में नथिया और झुलनी भी आ जाती है।

वे, मेरी शान्ति और सुख की ऐसी परिभाषा सुनकर कुछ खचराये से बोले—नथिया और झुलनी को शान्ति से क्या सरोकार ?

मैं बोली—यदि कोई बैकुण्ठाधिकारी नथिया या झुलनी के ही धारण करने में शान्ति और सुख का अनुभव करता हो, तो क्या शान्ति और सुख के दाता बैकुण्ठाधिकारी लोग उसे नथिया और झुलनी का प्रबन्ध नहीं कर देंगे ?

मेरे पतिदेव ठहाके मारकर बोले—हा हा हा हा हा ! खूब ! खूब !! तुमने अच्छा दावा पेश किया, पर तुम्हारा यह दावा वहाँ खारिज हो जायेगा, क्योंकि स्वर्ग में पाप बसता है, बैकुण्ठाधिकारी अपने भक्त को 'पापी' कदापि न बनने देंगे।

मैं—जैसे आप मुझे नहीं बनने देते ?

वे सहर्ष बोले—हाँ—! हाँ !! आखिर समझी तो ?

मैं—तो बस कीजिये, समझ गई, बैकुण्ठ के मालिकान भी आपही की तरह लेखक हैं, गोया मुझ लेखक की बीबी को स्वर्ग या पृथ्वी में कहीं भी लेखकों से पिछ न छूटेगा, मैं बराबर कल्पना के सम्राटों की ही सेवा का शिकार बनती रहूँगी।

स्वामी बोले—हाँ, तुम जानती नहीं हो, ईश्वर का एक नाम ही 'कवि' है, तो लेखकों से तो गहरा सम्बन्ध है। तुम्हें मालूम नहीं, कहानियों पर ही तो गहरे दुःख-दुःख आसित हैं, कल्पना एक अत्यन्त मानव-वादी चित्र दुल्ल है, जो कभी चिनट नहीं होता।

उसका बनावट ही आवाज थोड़ी—“मालिक नाशुमी ! मैं जानिये



हूँ, आज ही का वादा था, मेरा बेटा बुधुआ बड़ा बीमार है, आज ऐसे ही सरकार।

इस व्यावहारिक संसार के स्वल्पाघात ने मेरे नारायण को उनके चिरानन्त सुख-शान्तिमय कल्पनालोक से अति शीघ्र “पैखाना लोक” में ला गिराया और मुझे “लेखक की बीबी” होने के नाते भाड़े के गवाह की तरह गंगा उठानी पड़ी—“मालिक बाहर हैं”।

वह, सेती-भीकती, बड़बड़ाती चली गई, मेरे नामवर पति परमेश्वर ‘पैखाना लोक’ से निकल कर बाहर आये और पुनः ‘कल्पना लोक’ के सर्वोपरि सुख, सत्य, दया और निष्काम प्रेम के आनन्द लूटने लगे।

एक पतिव्रतधारिणी स्त्री होने के नाते, इससे अधिक मैं अपने लेखकनाथ के गुणानुवाद गाने में कहाँ तक समर्थ हो सकती हूँ, मगर मैं यह जरूर कहूँगी कि चोर, गिरहकट, एक्केवान, भट्टीवान की बीबी होना कहीं सौभाग्य है, इन कल्पना लोक के वासी कलम बहादुर ‘लेखक की बीबी’ बनने के दुर्भाग्य से।



## कथा-वाचक जी

रात कोई ज्यादा दिन की नहीं है। १९२८ के जाड़ों में एक कथा-वाचक जी महाराज धूमते-फिरते मेरे नगर में आ धमके। ग्राम के कुछ भक्तों ने उन्हें दुर्गादेवी के मन्दिर के पास कथा ब्रॉचने के लिये बिठा दिया। पण्डित जी थे पुराने कथक्कड़ और बोलते भी खूब

सरटि से थे। चाहे उनकी उक्तियों और कथनों में कुछ दम अथवा तथ्य हो या न हो, पर इसकी परवाह श्री पण्डित जी महाराज नहीं करते थे। अहमद की पगड़ी महम्मद के सर पड़ी, या महम्मद की पगड़ी अहमद के सर, इसकी कुछ भी चिन्ता उन्हें न थी। वे अपनी छोटे चले जाते। और करते भी क्या, ओटने के लिये ही तो बेचारे दो-दो चौकियों पर बैठ कर बैठे थे।

कहावत है “सेप ही से भिन्ना मिलती है” सो पण्डित जी का वेप-बिन्नास भी खूब था। माथे पर तिहुतिया “नाइट कैप” चुभा पगड़ी रखते, शरीर में बन्ददार कुर्ता, उसपर “एवा” पहरेते, आँखों में सुर्मा लगाते, ललाट पर १११ का छाप छापते और तुलसी की मोटी माला धारण करते, जिसे वे “हीरा” कहा करते थे। जिस समय अपने इतने साजो-सामान से लैस हो अपनी नगाड़े सी तोंद सँमालते वे चौकी पर थप से थोस जाते, उस समय उस हस्ती-काया के महाभार से चौकी बेचारी बड़ी दीन भाषा में चिल्ला पड़ती—“चर—चररर।” कथा-वाचक जी की वेपभूषा, उनके हाव भाव, साक्षात् क्षमा की मूर्ति, धर्म की प्रतिमा और सौजन्य की सीढ़ी-सी ही जान पड़ती। उनके, एक पर एक लदे सूर्यदन्त जब सकरुण हो उनके ओष्ठ-कोष्ठ के प्राचीर पार कर, श्रोता समूह की शोर परम निरीह भाव से झोका करते, तब ऐसी करुण सरलता इस “वृत्तिदोरी” से चू पड़ती कि बस देखते ही बनता। व्यासगद्दी पर शोभायमान होने ली थी आनन्दजी महाराज पार्श्व-वर्ती “नामदानी” के अंगुली-माला बल्ल में सुझते, और कुर्ते की जेब में पड़े हाथ के चरुण में पड़ोस में पड़ोस पड़ोस परस्पर पवित्रम् का एक डबल फेंक आता आता ही आता, एक सुकना शूक आना नजान पर और अन्त क्षण ( १९४१-१९४२ ) इत्यादि “आपड़ी” बना व्यसदेव की दोरी और श्री इत्यादि पितामह पर छुंकर आभ्यर्चना करते। फिर बहुत पने अर्थात्ता द्वारा नास्तिवादिओं को

बन्दकर लूँक रोकते अथवा इस अपकार का प्रतिकार करते, या “हे भगवान आज आरती में प्रचुर पैसे भेजो” गुहराते, यह तो जानें वे और उनके ठाकुर बाबा । फिर कुम्भकर्णी नाद से बोलो-बोलो श्री वृन्दावन विहारीलाल की जय ?” चिल्लाकर अपने कथा प्रारम्भ का विज्ञापन करते और भक्त समाज भी इस विकट चीत्कार में योगदान दे, बैकुंठ को हिला मारता । फिर दनादन पुष्पों की वृष्टि, बताशे की वर्षा व्यास गद्दी पर होने लगती । पुष्पमालाओं के महाभार पंडित जी जेल से छूटे टटके सत्याग्रही की भौंति लद जाते । फिर लम्बी बुटियावाले, राम फटाका और कण्ठी मालाधारी अपने कान पकड़-पकड़ कर ताबड़-तोड़ दंड पेलने लगते, मानो यमदेव से मोर्चे लेने के लिये वे बल पराक्रम अर्जित कर रहे हों । फिर पंडित जी महाराज अपने धुधुक नाद से रामायण की चौपाई—क्योंकि पण्डित जी के सरल सुबोध हृदय में संस्कृत की देवदेवी और उमड़ खाभड़ भाषा न उतर सकी—पढ़ने लगते ।

एक दिन पंडित जी ने अपनी कथा प्रारम्भ की—

“सुनो माइयाँ ! कह का कथा में आप लोग सुनकर कर आनन्द होते ही भये हैं, रामकृपा ते काल्ह में आज का कथा और ललित पढ़ाया सीछापद है, जिसे सरवन करने मात्रसे साँघ भवसागर पार लग जाएगा । सुनिये, सरोतावृन्दों, सिरी महाराज बाबा गजसुआमी तुलसीदासजी, इन सुहरों और बराभनों में कितना अन्तर श्री राम कृपा ते बतावते भये हैं—

“पूजिए ब्राह्मन वेद विहीना । सुहर न पूजिए चतुर प्रवीना ॥”

देखो, सुहर चाहे कितना हूँ पंडित चतुर परवीन हो जाए उसे कभी न पूजिए, और सिरी रामकृपा ते ब्राह्मन चाहे कैसाहूँ गूरख से मूरख क्यों न हो, वस देखते ही पोरन नाग उसके पाँव पर पटक दीजिए । आजकल जो कुछ अरियासमाजी अउर गान्धी (मः गांधी)

के “नन परेसान” (ननकोअपरेशन) लोग जो अधरम का अवतार लेकर जनमें हैं, उअह कहते हैं कि सुहरों को आपुस में मिला लो, उनको देवमन्दिर में जाने दो, पोखरे कुर्वे पर असनान करने दो। कहिये महाराज इस कुकरम का कोई पारावार है। भाइयो, सच बात तो यह है कि सब अरिया सुहर हैं, और सब “नन परेसान” वाले रंगरेजी हैं। अजी इन रंगरेजी पढ़नेवालों की भी कोई जाति पौति है? न इनसे मौस सब बचा, न इनमें भेष छुटो, न्हें पारे गबर-गबर खाने लगते हैं। जिनको “सब पान नारख पसेरी” ही सूझता है; जो मेहरार की रसोइया की भाँति बगार को “धनगरवा” (पानी भरनेवाला) रखते हैं, वे तो कल्पे करेते कि सब मिल जाय। मगर भाइयो आपका वेद-पुरान, बगवत कोई साधार (शास्त्र) सुहरों से खान पान की तो क्या, उनको आधा में पाने की भी अवेजा (अज्ञा) नहीं देता। देखिए कहते हैं —

\* चौपाई \*

हाथिन पाँए ते जाहु जताई । सुहर घर मत जाहु ए भाई ॥  
बलु खगिनी में परो तत्तावा । सुहर घर लनिजाहु भुगाला ॥  
सुहर गंग जो गोवन कह्यो । रौ-रौ नरक पाँडे गुग परही ॥  
सुहर सन जो देह छुवाव । सूकर होइ काट तहु पाव ॥  
भूलिहु जो इनके घर जाही । तिनकर अच छुटत हे नारी ॥

\* दोहा \*

जग विचारि करि बन्धु घर, तजहु नोइ अज्ञान ।

सुहरन गग सहयोग करि, होइहे गहि कालमान ॥

बोली भाई भगवन्द की बात ।

आपकी के समीप ही बैठे हुए नजरोट समीपगत होइ का  
कारा मुक्त मरुतल समीप जय से अविपुर्ण हो गया । सुहरों पर परिहृत  
की दूत रिपुर्ण उन्हें बोली और अनोखी बैनी । वह बारम्बार परिहृत

जी को चौकी पर मूड़ पटकने लगे तथा कथा-वाचक जी को शत सहस्र धन्यवाद देते हुए खड़े होकर दोनों हाथ ऊपर उठा के बड़े गद्गद् कण्ठ से बोले—“अहाः हाः हाः ! महाराज धन हैं आप ! आज आपकी अमरीतमई बाँड़ी ( बाणी ) से वरामन समाज कीरित-कीरित ( कृत्य-कृत्य ) हो गया । क्यों नहीं, यदि आप जइसे धरम उपदेशक धरम रक्छक ( रक्षक ) देश में उत्पन्न हो जाएँ तो धरम की विपदा गरस्त ( अस्त ) नैया कभी सहाँवर से पार हो जाए । बोलो-बोलो—भाइयों प्रेज से श्री पण्डित जी महाराज की जय ! महा जय !”

कथा-वाचक जी का पारा शव और सातवें आस्थान पर चढ़ गया । वे अपनी विद्वत्ता गुणज्ञता पर आप मुग्ध हो गये, और पुनः बड़े गम्भीर भाव से बोले—“सज्जनों ! साहूत कहता है, पूरन ब्रम्ह परमात्मा के औतार सिरी कृश्चन भगवान सुदूर दुरजोभन के घर का सेवा मिसरी, हलुआ पुड़ी तेआप ( त्याग ) कर, वरामन विदुर के घर साग सत्तू खाते भये थे । अजी जब परमात्मा इन मुद्दों के घर का अन्न जल गरहन ( ग्रहण ) नहीं करता तो फिर तेरे और मेरे की क्या बात ? इस हेतु हे पियारे बन्धुओं ( बन्धुओं ) मुद्दों से सहयोग कभी कैलानकारी ( कल्याणकारी ) न होगा । गोसाई जी राम कृपा से कहते हैं—

ढोल गँवार शूद्र पशु नारी । ये सब ताड़न के अधिकारी ॥

ए शूद्र लात जूता के मालुख्य ( मनुष्य ) हैं, इनसे वरामरी का विशेषार ( व्यवहार ) करना पान-विरत है । बोलिये राजा रामचन्द्र की जी !” अतः भोजन समाप्त हो जाने से सर्वप्रथम ही अपनी विकट गति से इस “जग” में जीवनका दे स्वर्ग का रास्ता साफ कर लिया ।

सत्ता दहते अन्ध एक श्रोता मन्त्र होकर पण्डित जी से पूछ बैठे—“महाराज किजई खराब ! मैं कुछ शक्त-मन्त्र-मन्त्र पढ़ता चाहता हूँ ! भला यह तो बताइये किन शास्त्र में दुर्वाचन को शूद्र और

विदुर को ब्राह्मण लिखा है। महर्षि व्यास प्रणीत “महाभारत” में तो साफ-साफ शब्दों में लिखा है, दुर्भोधन कुरुवंशीय क्षत्रिय, पाण्डवों का सगा चचेरा भाई, और भगवान् कृष्ण के बड़े बन्धु बलभद्र जी का शिष्य था। हाँ बल्कि विदुर की ही शूद्र होना लिखा है, क्योंकि वे बासी पुत्र थे।”

नाप रे ! परिडत जी के सर पर यह अचानक प्रश्न-पहाड़ कहीं से घहरा पड़ा। महाभारत किस चिड़िए का नाम है, इसे तो धाजतक उन्होंने स्वप्न में भी न सुन पाया था। २० वर्ष की अवस्था में अपने पिता श्री० के डण्डों की सुझपा से यही डो-डोकर समावण पढ़नी उन्होंने सीखी थी, और खाने भर की यह अच्छी विद्या थी। हाय !! यह बुद्ध, दानव की भोंति कहीं से कूद पड़ा। अब इस भरे समाज में इसका उत्तर न देना अपनी छिपी भर्त्सना की प्रकृति का प्रतीक है। परिडत जी सर खुजलाते हुए बोले—“एक कलम ने क्या ?”

प्रश्नकर्ता—“मैं श्रीमान् का दास, दो हाथ पैर वाला ईश्वरीय पुतला हूँ।”

परिडत जी—“अजी सो केशवा ( क्या ) मैं नहीं देखता हूँ। मेरे पृथुने का मतलब यह है कि तुम कौन जाति के हो।”

प्रश्नकर्ता—“मनुष्य जाति के।”

परिडत जी—“अब मनुष्य ( मनुष्य ) जाति के तो सब ही हैं, मुर्खों का भी जाति, मर्त की भी।”

प्रश्नकर्ता—“विदुर की जाति।”

“लेखक रे ! हमने तो मनुष्य की जाति की विवेक का विचार किया। विदुर की जाति ? तो क्या विदुर जाति का था ? न तो घर में तो उसे बाबाजी कल चुका है। बाबाजी का कल खाली होता है। शूद्र कलम से क्या मनावल भवा को देता। हाय-हाय !! कुरुर सिद्ध-विदुर को मैंने “जान न पहचान, खाला पुतला मनावल” की भोंति पार्श्व ही क्यों धकीड़-मारा ?

शैतान विदुर जब सुदर था तो उसने महाभारत में जन्म ही क्यों लिया ? बुरा हो महाभारत बनानेवाले की, आफत खड़ी कर दी । प्रश्नकर्त्ता पण्डित जी को चुप्पी साधे देख फिर बोला—“महाराज दास प्रत्युत्तर की प्रतीक्षा में है ।”

पण्डित जी घबराये-से बोले—प्रेतेच्छा ( प्रतीक्षा ) केआ ( क्या ) भाई ! तुम परेत ( प्रेत ) तो नहीं ? ( इसी समय शिक्षित श्रेणी ठठाकर हँस पड़ी । ) प्रश्नकर्त्ता बोला—अपनी शक्का के जवाब की बाट जोह रहा हूँ ।

पण्डित जी अब क्या करें, मुश्किल पर मुश्किल, यह तो इस टालम-टाल से हटने का नहीं, ससुर पक्का ब्रह्मपिशाच मालूम पड़ता है । अब तो “गले पड़ी ढोलकी बजाए सिद्ध” । लाचार कथावाचक जी बोले—“सुनो भाई, दुर-दुर-जोधन को रजपूत और विदुर को सुदूर बताना सरासर मूर्खता है, यह सब अण्ड-बण्ड बातें अरिया-समाजी दूसे हैं, जइसे अउर-अउर पोथियों में अपने मत की बात दूसठोंस किये हैं ।”

इतने में रामरीभन पोंडे भट्ट बोल उठे—“बाह वा ! केआ ( क्या ) मकूल ( माकूल ) जबाब है, सचमुच यह फरसाद ( फसाद ) आरिअों का ही है ।”

प्रश्नकर्त्ता ने फिर कहा—“अच्छा रामायण जी में भी आर्यसमाजी कुछ दूसे हैं ?”

पण्डित जी को अपने रामायण ज्ञान पर बड़ी उदता थी, बल्कि ने सतों काण्ड के रचयिता स्वयं अपने ही को समझते थे, अतएव कड़क पर आधिचार बोले—“नहीं जी किसकी महतारी किसी बिआई दे जाँ वह सिरी रामायनजाँ में कुछ दूँस-ठास कर दे ?”

प्रश्नकर्त्ता-हर्षित हो बोले—“भली कही महाराज, भला यह तो

कहिए शिवरी शूद्रा थी या ब्राह्मणी, जिसकी जूठी बैर आपके ईश्वरावतार भगवान राम ने सराह-सराह कर खाई थी।”

अरे बाप आदमी है कि यमदूत ? अब इसका क्या जवाब दूँ ( ठहर कर )—“शिवरी मिलनी थी।”

प्रश्नकर्त्ता—“भील कौन जाति के हैं, क्षत्री या ब्राह्मण ?”

परिणत जी—“एक तरह से क्षत्री भी हो सकता है।”

प्रश्नकर्त्ता—“और दूसरी तरह से ?”

परिणत जी प्रश्न पर प्रश्न के बाणों से एकदम व्याकुल हो गये। उनकी दृढ़ता घोर उद्विग्नता के रूप में परिणत हो गई और वे बिल्कुल गूँगे बन गये। उन्हें मौन देखकर प्रश्नकर्त्ता बड़े विनीत एवं मृदु स्वरों में बोला—“देवता आप इस देश की श्रेष्ठ सम्पत्ति हैं, आप ही के पूर्वजों ने इस देश की रक्षा में आपने को होम कर दिया है। आप धर्मोद्धारक, समाज सुधारक हैं, आप इस देश के नायक, नेता, और देवता हैं। आप में ऐसा योगदान न आनी चाहिए। शूद्र भी आप ही के भरोसे हैं, उनके साथ आना न चाहिए, नेता-नेटी न चाहिए, कम-से-कम उनके साथ अनुन काया तो व्यवहार कीजिए। आप जाहल हैं—समाजवादी तो तो खिलवा है “नहिण दिश डर कुप बरोरी” आप क्या कीजिए, समाज के रोजगार इन शूद्रों पर। आप पिता हैं, इनके माता की भी काजिए, कायकर कीजिए मत। संसार में कर्म ही प्रधान है महात्मान, समाजवादी भी यही कहती है “कर्म प्रधान निरुप चरि राजा” प्राणीक, मानव, अथवा सब निम्न जीवों के होने हुए भी अपने सुक्यों से शक्ति हो भय और चपल शक्ति प्लवत के निपटा कुल में अन्य कारण उनके भी अपने सुक्यों के कारण संसार और जीवन ही बना रहा। आप तो स्वयं निद्रान हैं निचोड़िए, और देश की प्रार्थना है, ऐसी शिक्षा उपदेश न दीजिए जिससे देश समाज की बला जाय।”



प्रश्नकर्ता की एक-एक बातें स्वर्णक्षरों में लिखी जाने योग्य और शास्त्रों की चोखी उक्तियाँ थीं, परन्तु वज्रमुख पंडित को इसमें अपनी भयंकर मानहानि, तथा अपमानजनक पराजय सूझ पड़ी। उनकी वेचैनी अब गुस्से में बदल गई, और वे ललकारते हुए बोले—“सरो-ताओं ! धिक्कार है हम सबों को, इतने सनातन धर्मियों के रहते हुए बेआस ( ब्यास ) गादी पर बैठे एक पंडित, कथावाचक को न जाने यह कहाँ का सूदर वेदजत कर कर रहा है, और तुम लोगों से कुछ नहीं होता है। डूब मरो, अपने धर्म की शिकाईत सुनकर भी इस पापमर को कबे चबा नहीं डालते। तुम लोगन से पार नहीं लगता तो कायर लोगों, हम परतीगेअँ ( प्रतिज्ञा ) करते हैं, जबतक तुम सबलोग अपने नगर के सूदरों से उनके मदतगारों से बिलकुले नाता न तोड़ लीगे, तब तक हम भगवान की शपथ खाकर कहते हैं, ... नहीं करेंगे।”

पंडितजी आँखें मुँह व्यागगादी पर पड़ गये, और लगे पुष्पा फाड़-फाड़कर रोने-चिल्लाये—“क्यों दा के पक्षों : दलना दउडो !! इन कायर कपूतों से कुछ ना होगा। अक्षर कहते हैं—‘अनिरु मित्रदा मुनाहि जो काना। होहि पाप भउ पात समाना ॥’ —अनिरु जीम जो हो मनुसई।” हे भगवान तुमकी सूदरों का अन जल मछुन करने वाला, कहने वाले का शपथ बकरी कुतू नदी कर सकते। इस कारण हे दीनबन्धु तुम खुद सूदरजन बकर लेकर दउडो। शायदग भग के गले पर गोपरो कुरो नून रहा है, अउर यह इतने कोमल तुम की मर, खदे २ बकर बकर नई तक रई हैं, हम अफैले केआ करें परमेशवर !”

जब कथावाचकजी की यह आर्तशुद्धि खाली न गई, कुछ भक्तों के हृदय में उनके मनमान इतर आये। समरीभक्त पाँडे ने दौड़कर तुदराव चक्र की एका में बही-पठ उठा लिया धरफोरन भगत ने गदा के बदन में बटावठ एका चोकी उठाया तोड़ लिया, फिर तो उस

वेचारे प्रभकर्ता—“शूद्र” पत्र के सम्पादक पर इतनी मार पड़ी की वह बेहोश होकर गिर पड़ा। दूसरे दिन सारे नगर में भयानक हाहाकार मच गया। शूद्र परिवार पानी-पानी और दाने-दाने को तड़पने लगे। हाट-बाट, कुआँ, पोखर, यहाँ तक कि पायखाना-पेशाब के भी रास्ते बन्द कर दिये गये। इसके-दुखे जहाँ भी बिचारे छुके-छिपे शूद्र मिलते, वैकुण्ठाधिकारी, कथावाचकजी के अमूल्योपदेश का भति भाँति पालन करते। शूद्र सन्तान के आर्तनाद से श्रमन्तः इस राक्षसी अत्याचारों से तंग होकर शहर से निकल आये। “शूद्र सम्पादक” सरकार की शरण आये।

तीसरे दिन व्यासपुत्र शुकदेव मूर्ति, वैशम्पायन स्वरूप कथा-वाचकजी महात्मज परब्रह्म का विस्फार हुए। दिनभर कड़ी धूप में गेटे पर, दाना-भाजी सुकल हो गया। पण्डित भरसाँ में भूख के चूड़े पीकाएँ लगाये लगे। सारे जाल के फँट सूख रहा था, और सँह लटक गया था, जिसपर बिचारे पण्डितजी की अति सुकुमारतापूर्वक, दूध मजदिर जिलाकर आला दुई गेटे, कई नार पुलसों के डंडे और घूसों से दूरपेठ दी गई थी, और उसमें दद जा रही थी। कई कोड़ियाँ मालियाँ खाकर पंडितजी का मान भी सम्मत हो चुका था। फिर एक दिपटा और आई। मुकदमे की जाँच चल गी देगी, और बलवालों को झोंकने से फिर यह बलवा कर देंगे, इसलिए शहर कीतवाज में बलवा बल कथावाचक जी को हाथलात में बन्द कर दिया। सम्पादक शूद्र को भी ग्राम-प्रवेश से वर्जित कर आदर हो नगरछे में सी रहने का आर्डर दे दिया।

गत बहुत नीत गई थी। कल जी पंडित को दिवंगति “तेरही नरन एकादशी” हो जाती थी, और आज गलतकाल से यही पण्डित कर गये थे। जुगा पीड़ा से उनके लस कुखरीबर में जैन जातक का उद्विग्न गवा। उनके भाभी लो दीवारी में उदङ्ग उदङ्गवर भगवान को

गोहारते या खराटे भर रहे थे, पर पंडित जी का बुरा हाल था ? कभी क्वाड़ के जंगलों से भाँकते, कभी तौंद ठोकते, कभी श्री० सेताराम को याद करते, और कभी अपनी मूर्खता पर—अनधिकार चेष्टा पर, रोते पछुताते । अपने-आपको गालियाँ देते, तुलसीदास को बुरा भला कहते, सनातनधर्म को कोसते, बिदुर को दुत्कारते, अपने महाप्रभु को फटकारते, पर बेचारे को किसी में भी शांति न मिली । छुधा दबनी तो दूर बल्कि वे जितना ही भूख के विषय में सोचते, मन को इधर-उधर उलभाते वह उतनी ही—“जिमि प्रतिलाभ, लोभ अधिकई” की दशा को प्राप्त हो जाती थी । आखिर बिचारे क्या करते, सबका तो गोत्रोच्चार कर ही चुके थे, भूखमार के जंगले के निकट आये और बड़े कातर स्वर में बोले—“कोई है बाबूजी ?”

एक पुलिस जो इनकी निगरानी पर तैनात था, पर बेचारा बड़ी भीठी नींद ले रहा था, पंडित की पुकार से जग पड़ा, और झुत्ता हुआ बोला—“कौन है वे ? क्या पैखाना पेसाब करेगा ?”

हाय-हाय कहाँ वे दिन, जहाँ हजारों, चरण धूलि मस्तक पर लपेटने के लिये लालायित रहते थे, दो-दो चौकियों के ऊपर तोशक, गसनद लगातार सप्पाटों की तरह बैठा करते थे, हल्वे और खम्ती कचौरियों खाते-खाते कंठ छिल जाता था, वरार तरसाल दैवधार रहता था और कहाँ आज का दिन, एक बन्द कमरे में दिना रोशनी और बिछावन के चमगादड़ों की तरह बैठा-बैठा दरिद्र अनाथों की भाँति भूख-प्यास का रोना रो रहा हूँ । हायरे समय ?”

पण्डित जी अब यह अपना दुखरूपी क्रोध किसपर उतारते ? अग्नि की लपटों में पड़कर कटोर लोहा भी गलकर पानी हो जाता है । अनाथ पण्डित का बड़ी नर्मी से बोले—“तनिक मुनिये बानूजी !”

पुलिस फिर सो रहा था, इस बार वह उठ होकर बोला—“कहाँ है ? कहता मुझ नहीं, खाली बाबू—दादा की ही पुकार पर पुकार मचा

रहा है। तुम लोग साला आपस में झगड़ा करेगा, और खाना, पीना, सोना, हमलोगों का हराम करेगा। बोल क्या है ?”

परिडत जी और दबे, और झुके। ऐसी तीक्ष्ण भाषा का प्रयोग अब तक उनके प्रति किसी ने नहीं किया था, दबी जुबान से, दाँतों के इशारे से बड़े करुणापूर्ण स्वर में बोले—“बाबूजी आप अइसा काहे बोलता है। हम बरामन हैं। लोग मेरा पैर पूजता है। हम कथा बाँचता है।

पुलिस और कडक कर बोला—“चुप बंदमाश, तुम कथा बाँचता है कि आपत मचाता है। बंगलने तक की तमीज है नहीं और कथा नाँचता है ? चिरहान के दुम बने हैं ? तुम निरदमन रहता तो योही आपत परवा कर देता ? बोल क्या कहना है ?”

परिडत जी संकुचाये से बोले—“आत कवन जाति के हैं पुलिस बाबू ?”

पुलिस बोला—“अबे जात पूछकर क्या करेगा ? जेलखाने में जात पूछता है, अब तुम्हें डोमड़ों के साथ बैठकर खाना होगा, और मेहतरो की तरह पैखाना साफ करना होगा।”

परिडत जी अब अपने को रोक न सके, पलक-पलक कर रोते हुए बोले—“ये बाबू, हम वहाँ नहीं जायेंगे ? बाप रे बाप ! बखर पर इस धरमधजा पर ! हाय !! मेरे नज्जे कलंग कलंगकर गार जायेंगे। लाओ दादा हम आज ही सूहरों का जल मांगें हैं। हाय रे हाय !!”

पुलिस—“बेवकूफ ! नहीं पान गले न सूही थी ? किस जोस पर केनारे मरीच मजदूरो को पीटा दिया ?”

परिडत जी लाकर बोले—“साहजी, मेरे पाव तुरी नो जगत है, दीहाई सरकार, चांगेमा जी से भइ चुनकर तुम्हें छुड़वा दो दादा। बाप रे बाप, कहता था थापले बाप से “अरे हमको जल पढ़ाव” आखिर बहने का पला इस लुहौती में भीमना पड़ा। बाबू इस बड़ा अर्दास देंगे

सरकार । किसी प्रकार हमको छोड़ाओ, हाथ जोड़ता हूँ, पोंच पड़ता हूँ । मेरी घर वाली रोते-रोते मर जायगी । हाय रे हाय, किस बलाय में फैसा !”

पुलिस बोला—“अच्छा अभी सो रहो, इसका इन्तजाम कल होगा ।”

परिडत जी की भूख, भय के आतङ्क से भाग गई । वह रात्रि भर “शूद्रदेव-शूद्रदेव” की रटना रटते रहे । चूँकि सनातनधर्म पर से तो उन्हें उसी समय विश्वास उठ गया जब वे पुलिस के हाथों बसीटते हुए थाने में लाये गये, और उस समय न प्रह्लाद-रक्षक नरसिंह भगवान् थाने के खम्भे फाड़कर उनकी रक्षा-हेतु प्रकट हुए, न द्रौपदी-दुःकूल को बड़ानेवाले ईश्वर ने ही स्वर्ग से कुछ सहायता भेजी ।

चौथे दिन परिडत जी, गाँठ के दो सौ रुपये गँवाकर, शूद्रों के पोंचों पड़े, कान पकड़े, ज़ामा भाँगी, और थाने से तीर की तरह जो भगे, फिर आज तक दिखाई न पड़े ।

### ३

## आँखों की प्यास

उस दिन मेरी मित्राग्नी विनोदिनी ने अपने डाक्टर ननि की आँखों की प्रबल चिन्ता के कारण मेरे एक बड़ा सनेहार और मित्राग्नी किस्सा मुझे सुनाया । विनोदिनी के पाँच डाक्टर तारापुत्र सेन पढ़ा अति प्रचण्ड विकट डाक्टर थे, और एक डाक्टर के जिन जितनी भी इत्-शुष्कता, तथा काटनता की आवश्यकता होती है, उगने कदा

अत्यधिक प्रचुर मात्रा में उनका डाक्टरों हृदय भरा-पूरा था। दिन रात के नश्वरों की सङ्कत-रोगियों की करुण कराह और आर्त चीत्कारभय बातावरणों के सुयोग ने, उनके हृदय को गच की नाईं पुख्ता और पत्थर की भाँति कठोर बना दिया था। अब संसार के अतीव करुण से करुण दृश्य, दीन-सी-दीन दयनीय घटना उनके पोखते दिल में टकरा कर आपही नष्ट-भ्रष्ट हो जाती, लेकिन उनके डाक्टरों दिल को तनिक भी लुब्ध या क्लेषित न कर पाती। विनोदिनी-सी कोमल-हृदया, भावुक नारी के पति-देवता डा० तारामूषण सेन इतने सुन्दर सुयोग्य पश्चिमी चिकित्सा-पद्धति के चिकित्सक थे कि ऐसे अद्भुत जीवनशायी की “आँखों की प्यास” कथा क्यों न एक विस्मयोत्पादक तथा तरल शीत्सुक्य-जनक हो।

मैं विनोदिनी की दुब्धियाँ हिलाती, प्यार से बोली—तो मुह मीठा कराओ, बाजे बजवाओ जो सेन मोशाय को भी “आँखों की प्यास” व्याकुल करने लगी।

वह हँसती हुई बोली—अरे तनिक मुनो भी तो अपने सेन महाशय की “आँखों की प्यास” कहानी! यह तो तुम जानती हो कि संसार के आठवें आश्चर्य हैं। सीने में दिल है पर रक्तहीन, अस्तित्व के पर शुष्क काठ! तो ऐसे विचित्र प्राणी की आँखों की प्यास-कथा भी अद्भुत ही होगी।

मैं शीत्सुक बोली—तो क्या उनकी “आँखों की प्यास” कथा का अर्थ यह है कि किसी निदान के योग्य भयंकर “कांसेर” या “तापी” की रक्त-पत-प्लुन क्षामा-भाङ्गरी पर वरमाकणित हो “नश्वर पल्लव”-मिलालन दर्शन के हेतु उनके नखल सुमल प्यासे हैं?

“हा-हा-हा”—उद्दाम यौवन के उन्मुक्त हास्य से मुझा की शोभा विखेरती हुई, अपने पति के नेत्र-निवासा के दिग्पद में मेरी ऐसी तन्निवाषा अवसर कर, विनोदिनी वारा-हास्य प्रवाहित पंरती हुई बोली—

नन्हीं-नन्हीं रक्त-पीव की शोभा के तो वे इतने प्रचुरानन्द लूट चुके हैं कि उनके नयन अब उसके लिये प्यासे नहीं रह सकते, बल्कि वह तो एक बिचित्र ही प्यास है।

“दुस्त भले मानस की”—प्यार से उसके गोल-गोल कपोलों पर आघात करती हुई मैं बोली—“बताती नहीं, केवल प्रतीक्षा के अधर में लटकाये प्राण लेना चाह रही है। अन्ततः ठहरी तो डाक्टर की मेहरी, शुष्क कठिन, हृदय विहीन, सत्संगति की महिमा का स्वरूप फल भी तो तुम्हें प्राप्त हो।

विनोदिनी बोली—अच्छा गत सप्ताह +++ सिनेटोन का मूक चित्रपट जो सिनेमा हाउस में प्रायः एक सप्ताह चला था, उसे तो तुमने देखा था ?”

मैं अधीरतापूर्वक घबराकर बोली—हाँ-हाँ—तो ? बड़ा बुरा था वह चित्र ! पर क्या डाक्टर बाबू का दिल किसी राजीवलोचना का लक्ष्य हुआ है क्या ?”

वह और हँसी ! कैसी पागल स्त्री है, जिसका देवता दूसरे पर ढला जा रहा हो, उसकी यों खिलखिलाहट ! पूरी अलहड़ है आभासिन !

वह बोली—अजी किसी राजीवलोचना के लक्ष्य बनते तो बिचित्रता ही क्या थी ? आज तो सैकड़ें निम्नार्थ लक्ष्य कहीं का शिकार बने जाते हैं। पर वे तो एक निराश्री ही जीवन का गिथाना ननं हैं।

“बता पागली ! मुझे यों बेसानी पान मार।”—मैंने उसे फिर चपतिया दिया। वह फिर हँसनी हुई बोली—“तुम तो जानती हो वह चित्र वहाँ सत्त दिन दो-दो “शो” चला था। तुम्हारे मेन प्राथा सातों दिन दोनों प्रदर्शन बराबर “एटेंड” करते रहे। प्रति दिन एक-एक वजे रात में, गों भी इस निहुर जाड़े में क्रिवाड मीलते-मीलते मैं संग आ गई। एक दिन तुम्हें बर्खास्त न हुआ और मैं अन्त में बोली पड़ी—“एक जगह उम मुए चित्राट में दया रखा है, जो आज

सप्ताह भर से नित्य दोनों समय जाते हो। एक ही तमाशा आज छे दिनों से चल रहा है, फिर भी तुम्हें बिना देखे एक दिन भी चैन नहीं। अब कल से मुझे किवाड़ खोलते न बनेगा, एक नौकर रख लो और दया कर मुझे इस भयावनी सर्दी में न मारो। तुम्हारे सदृश डाक्टर नहीं हूँ जो मेरा हृदय कठोर हो गया है और मैं इन कष्टों को सह लूँगी।”

वे अपना हैट टेबुल पर रखते हुए मेरी खाट पर आ बैठे और बड़ी दीनतापूर्वक बोले—“देखो कल तक यह “फिल्म” चलेगी, जैसे ६ दिन कष्ट किये वैसे एक दिन और मेरे लिये कष्ट स्वीकार करो”—फिर वे मेरे नौकर रखने की बात पर अपनी कृपण नीति की रक्षा करते हुए अपव्यय, तथा अपने काम आप करने के आदर्श पर, अपनी सनातनी वक्तृता सुनाने के उपक्रम करने लगे। मैं बीच ही में बाधा डालकर बोली—“रहने दो अभी अपने भाषण उपदेश! उसे सुनते-सुनते तो कान पक गये। मुझे बड़ा अचंभा तो इसलिये हो रहा है कि तुम जैसा घोर मितव्ययी और विचित्र प्राणी एकही चीज आज निरंतर छः दिनों से रोज दो-दो बार देखता है, फिर भी उसके मेरी की भृति नहीं होती? तुम्हारे हृदय के तुल्य इस निष्पट में ऐसी फास-सा विचित्रता है, पहले एक बड़ा सुनाहवा, फिर जो तुम कहाँसे सुनोगी?”

पुनः दो रोज मीमांस्य पढ़ते कुछ मुश्किलसे, फिर सुनने पर कानवी शौकी, फिर उसके भावुक कविता-से मद-माद हो गये। सब पृष्ठों को पत्र से मैं इसके पत्रों की सेवा में अपने माता-पिता द्वारा निरस्त की गई, इस सूखे काठ की ऐसी “दुरिग्रही”—एसी वाज्यगी मीमे कभी नहीं देखी। मैं हैरान हो रही थी। बल्लूज कौनसा ऐसा तरल-कारक पदार्थ है इस चित्र में। शौं—तो वे बोले—“सुनो, तुमने तो पहले दिन उस निष्पट का देखा हो था।



मैंने कहा—हाँ।

वे बोले—तुम्हें वह “सीन” याद है, जब एक सुन्दरी तरुणी स्नानार्थ एक जलाशय के निकट जाती है, और सर्वप्रथम अपनी जाकेट खोलकर कुल पर रखती है, और ज्योंही वह अपनी साड़ी खालकर बिल्कुल नंगी हो, जल में पैठना चाहती है कि ठीक इसी समय उस जलाशय के किनारे से ही एक “ट्रेन” पास करती है, और वह बगैर साड़ी उतारे ही जल में पैठ जाती है। यद्यपि उसकी हार्दिक इच्छा है, मैं जल में नम्र ही स्नान करूँ तथापि यह सुसरी ट्रेन ऐसे ऐन मौके पर आती है कि वह गरीब अपने दिल की साध नहीं मिला सकती। बस, इसी दृश्य के लोभवश मैं जाया करता हूँ।

मैं बोली—तो अब उसका लोभ ही क्या? उसे एकबार के बदले बारह बार देख चुके, जिस चीज की बार-बार देख चुके अब उसमें आकर्षण ही क्या, और कैसा?

वे बड़ी तत्परतापूर्वक बोले—नहीं, नहीं, मैं वह सीन देखने तो जाता नहीं हूँ।

मैंने पूछा—तब क्या जाते हो देखने? उस नम्र स्नानार्थिनी की रूप-शोभा निरखने?

वे दोनों से जीभ दाबकर बोले—व-च-न, यह तुम क्या कहती हो?

मैं—तब क्या धरने रोज जाते हो।

उन्होंने कहा—मैं रोज इस व्याकुलता में जाता हूँ कि शायद सुसरी “ट्रेन” एक दिन भी, ५ मिनट के लिये लेट आवे तो उस लिचारी की मनचाही हो जाए। मगर न “ट्रेन” लेट आती है, न मेरा आकर्षण घटता है। देखो शायद इस बच्चे हुए “शो” में “ट्रेन” लेट आ जावे। बस यही एक मात्र मेरी “ऑखों की प्यास” है।

मैं तो हँसते-हँसते स्लोट-पोट हो गई, और विनोदिनी भी। कैसी अजीब खन्ती तुम्हारे खसम के सिर पर सवार है! अरे पूरा बागड़ ही

तो नहीं है ! वह कोई प्राकृतिक दृश्य थोड़े है जो देवात् किसी दिन वैसी बात हो जाए । वह तो तमाशेवालों का बनाया हुआ कृत्रिम और निश्चित सीन है, उस दृश्य का इसी प्रकार सीन ही सेट हुआ है फिर गाड़ी लेट आयेगी ही क्यों कर ? तुमने उन्हें समझाया नहीं !

विनोदिनी बोली—क्या समझाती, अरे मैं तो हँसते-हँसते मर गई, और वे गुस्से से काँपते बैठक में चले गये । उन्होंने लगभग मैं उन्हें बना रही हूँ, तब से बोलते तक नहीं । कल वह फिर पटने की भली गई, अब वे रोज शाम को “ट्रेन-लेट” होने की आशा में पटने जाया करते हैं, और प्रातः लौटते हैं ।

सचमुच इस विचित्र डाक्टर की विचित्र ही थी:—

“आँखों की प्यास”

## ४

### चोट

“हाथ की चोट ! हृदय की चोट ! मर्मस्थल की चोट ! मस्तिष्क की चोट ! चोट !! चोट !!! जल् ! तेरा बुरा हो !.....”

हमारे पण्डित जी, अलाव कहने की हम २-४ विद्यार्थियों को कौमुदीसूत्र की साधना करा रहे थे, पर वास्तव में अगर कही चोट की ही रत्न हम लगाये जा रहे थे । पण्डित जी की वह स्वपाल था, कि लड़के हमारी चोटखतना सुनते ही नहीं । “देखने में ऊँच और रटने में लाला” लुटियावाज चले भले ही लेले फाड़ें, पर मुझ “सर्प-कर्म” के कुरिह में

यह चोट-रटन्त पहुँचे बिना न रही। मैंने पूछा—“गुरुजी ! यह चोट कौन-सा नवीन सूत्र है, जिसे धोँकने में आप बड़ी तत्परता दिखा रहे हैं ?”

जलती कड़ाही में जैसे जल के छोट्टे पड़े। गुरुजी के दिल पर मेरी इस धृष्टतापूर्वक-चोट-सूत्र की सीमांसा पर, कितनी चोटें पहुँची सी सुनिये। वे अपनी आँखें, बड़ी कसरत से, जो भीतर धँसी रहती थीं, बाहर निकाल और उन्हें अपने बन्दरी-क्रोध में लाल-लाल कर बोले—  
“रटोगे सूत्र या लगाऊँ ? बड़े “चोट” पूछने वाले बने हैं। कौन वेहूदा “चोट” रटता है, और कौन चोट कहता है ?”

गुरुजी के ऐसे भिन्नाये हुए उत्तर ने उनकी “चोट” को मेरे लिये और भी रहस्यमय बना दिया। हाँ ! बात क्या है, कि खुद तो चोट-चोट रटते हैं और पूछने पर नये बैल ..... भी हो मेरे सिर इस “चोट-रहस्य” के अन्वेषण.....



जो चोर होता है, वही अपनी दाढ़ी में तिनका ढूँढ़ता है। पापी का हृदय जिस किसी को बातें करते देखता है, याही चमकता है, कि हो-न-हो यह मेरी ही पाप-कथा की बातें करता है। हमारे परिवार जी की भी बात ऐसी ही थी। इनके निकट ही एक शूद्रवंश की अविवाहिता षोडस वर्षीया अमित्र सुन्दरी कन्या रहती थी। एक दिन वह परिडत जी के यहाँ एकादशी की तिथि पूछने आयी। परिडत जी ने बसों उसकी चना को दाँत देखी, पहरों में पत्रा खोला और मुहत्तो बाद तिथि बतायी। वह दुग्गे-जगल की चिन्ती पुतली, नाचो-नजाकत की दलती-तिरती तन्वर, एकादशी तिथि क्या पूछने आयी, हमारे गुरुदेव को खासा सौदाई बनाकर चली गयी। इनके बिमल शानन्ध परिडत-पूर्ण हृदय पर चोट लगा गयी। चोट खाकर हमारे परिडत जी चारों

खाने चित्त हो गये। जब वे स्वर्ग या नर्क-धाम से धरणी पर पटके गये, तब कुवेर ने अपने अतुल अगम्य कोष से न तो इन्हें एक कानी चित्ती ही दी, न ब्रह्मा बाबा ने किसी गुले-रुखसार को लुभाने के लिये इन्हें—गुलफाम ही बनाया। सरस्वती देवी की कुछ कृपा थी, वह भी थोड़ी-सी नाममात्र के लिये; दूसरे शब्दों में पण्डित जी पृथ्वी के बोझ ही थे। धन, विद्या और सौन्दर्य, इन तीनों प्रबल मोहनी शक्तियों में कोई भी शक्ति इनके पास न थी। एक तो देहाती आदमी! दूसरे सर पर प्राचीन पण्डिताई सवार। पूर्वजों की परम्परा के पक्के समर्थक! सिगरेट-बीड़ी से घोर वृष्णा, परन्तु “तमाल पत्रम्” से हार्दिक प्रेम! कोट-कमाज, इङ्गलिश-शू, फेल्ट कैप, हैट से जानी दुश्मनी, पर बाबा के २० गज के ढगाड़, नाना के पौरिया-काट का बन्दवार जामा (कुर्ता) और लल्लुआ चमार की पैर नोचती जूती से बड़ी प्रीति थी। सिगरेट का धुआँ जहाँ उस गरुड़ नासिका के गहर में घुसी, कि पण्डित जी को फिट पर फिट आयी, पर अपने मुखार्चिन्द से अहिर्निश, सृष्टि की एकमात्र गुल की खाएँ ब्रह्मा बाबा की बतायी ‘तमाल-तमाल’ की मन्त्रमग्न निरन्तर-प्राणा-व्यूहबू (!) से वे खूब प्रसन्न रहते थे। उन्होंने अपने एक लक्ष मोक्ष-दायिनी “राम सुती” का शुभ नाम ‘सर्वावनी’ ‘ज्ञान-वांछिनी’ ‘पाप-नाशिनी’ ‘चेतन्य-दायिनी’ ‘खुलासा दस्त कारिणी’ आदि रखे थे। कभी-कभी तो वह यह कह बैठते थे, कि लक्ष्मण की मूर्द्धा के समय लोभ से हमी “चेतन्य-नृत्ता” की तैय्यार लक्ष्मण की चेतन्य किया था। पण्डित जी अपनी इस “रामसुती” के निम्न एक शब्द भी सुनने की तैयार न थे। बाबा आदम के जमाने के लुसे से लयी उदर तक लम्बी जैव में, निश दिन-रात सुती भरी रहती थी। तैल बर्तों से ज्वारा खर्च इतना आनन्द-दिनी को उदाकता में होता था। निरन्तर-विमट पर कोंके पर कोंके अपनी आलस्यी सुख-कन्दरा में रखते थे और स्वाद के नाचें उगल-उगलकर एक

अम्बार-सा लगा दिया करते थे। राम ! राम !! जी तो चाहता था, कि ऐसे अघोरी का मुँह बकोट लूँ, पर बेबस था।

एक दिन मैं एक सूत्र पूछने गया। सूत्र बताते-बताते वही ब्रह्मा के प्रशंसित “तमाल तमाल” की पवित्र गन्धमयी खूशबू के साथ-ही-साथ एक कुह्ना थूक बलवत्ताकर उनकी मुख-कन्दरा से निकल पड़ा। मारे खूशबू के (!) मुझे उसी दम उल्टी हो गयी। फिर तो तीन दिन तक ठीक भोजन के समय उस सुगन्धि की याद आती रही। मुखसे ही नहीं, बल्कि पण्डित जी के अंग-प्रत्यंग से—यहाँ तक कि कुर्ता, छाता, चादर, जूता से भी उनकी इस ‘खुलासा दस्त-कारिणी’ की सुगन्ध सदा उड़ा करती थी। बन्ददार कुर्ता, जिसमें भित्तव्ययिता के नाम पर कपड़े की खासी कोताही (कमी) की गयी थी, बड़ी कसरत से इस कुम्भ-कणों काया में धुसेड़ा जाता था, फिर भी बेचारा निर्बल बन्द, उस नफ़ारे-लगा लोंद के प्रबल वेगों के सामने कहाँ टिकता, बाँधते ही भय-भयानक दूट पड़ता था, और उनका वह “प्रचंड पेट” नई बहुरिया-सा कुर्ते की ओट से भोंका करता था। श्री स्वर्गीय लकड़-दादा जी की शक्ति-शाली पर दान में मिली, एक बिस्वा अरज वाली पगड़ी के नाम पर आज तक संभय कर रखी गयी थी, जो फटकर खीर-खीर हो गयी थी। पण्डितजी उसे “दादा जी की पगड़ी” कहकर बड़े प्रेम से बाँधते थे और बाँधने पर पगड़ी की एक-एक खीर, चारों ओर गीरा के झेहरे की तरह लटलट कर, खयसाधारण का मन भुग्न करने के साथ ही साथ पगड़ी की प्राचीनता का भी समर्थन कर रही थी। जूते भी प्राचीनता के द्योतक थे। चलने पर फूट-फूट की ध्वनि के साथ ही दो-दो तीन-तीन सेर धूल पीछे को फेंका करते थे। पण्डित जी मुश्किल से महीने में २४ रु० चचा पाते थे। ऐसी सफाई और ऐसी कमाई पर जीट की क्या क्या हो ! पर हों ! एक बात थी, पण्डितजी की आज तक हमलों ने

हँसते और मनोरञ्जन करते कभी नहीं देखा था। उनके विकट मुख-मंडल पर प्रचण्ड पण्डित्य की गम्भीर सिकुड़नें सदा पड़ी ही रहती थीं। विद्या-प्रभाव से उनके नयन-युगल सर्वदा रक्त-वर्ण ही रहा करते थे। किन्तु जिस समय वह शूद्र-कन्या इनके निकट से निकलती थी, उस समय तो इतनी जिन्दादिली दिखाते थे, ऐसी सौजन्यमयी मूर्ति धारण कर, प्रेमपगी दृष्टि से अपने एक-पर-एक लदे हुए दाँतों को बिदोरते, कि बस रे बस ! देखने वाले समझते, कि यदि साक्षात् प्रेम और सौजन्य की जीती-जागती प्रतिमा हैं, तो यह हमारे पण्डितजी !

ज्यों-ज्यों दिन बीतते थे, त्यों-त्यों चोट, अपनी चोट और भी तौल-तौल कर लगाती थी। प्रेम-भाव से इनका प्रत्येक अङ्ग परिप्लावित हो उठा था। गृहस्थ के भूत इनके खल्वाट खोपड़े पर चढ़कर धमा-धमाके मचाने लगे थे और उनके ऊधमों के मारे इनके नाको दम था। उठते हाथ, बैठते उफ, सोते चोट की रटना करना, इनके प्रेम-जीवन का एक मुख्य कार्य हो गया। शायद पण्डितजी महाराज ने जिन्हें आज भी अक्षर-अक्षर कौमुदी सूत्र याद है, अपने बाल्यजीवन में सूत्रों के स्मरणार्थ इतनी रट न लगायी होगी, जितनी कि आज इस चोट की रट लगा रहे थे। पण्डितजी ने कई बार मुझे उससे (शूद्र कन्या से) बातें करते देखा था। इसी से “बीबी से पार न पावो, और पियाँ भी मोन गारो” वाली कहावत के मुताबिक कुछ गरीब वेगुनाह पर ही बेतुह नज़र पड़ते थे। सर्वदा मुझे संदिग्ध नेत्रों से देखते और मन-ही-मन सोना करते कि बस “नरे हनुदे का कंकड़” है तो यही। उस दिन जो मैंने “चोट की बातें” पूछी थीं, इसी कारण पण्डितजी मुझपर बेहद नाराज हो, भग्न पड़े थे।

जो लोग आज शूद्रों के नाम पर नाक सिकोड़ते हैं—अपने मन-गढ़े “नृणांश्चम चम” पर भयाँदा का मुलम्मा बँटाकर इस तरह मतुष्य

जातिके उन सात करोड़ प्राणियों की—जिन्हें मेरी ही जैसी अस्थिर्यो हैं, जिनकी सेवा से हम कभी उन्मृग नहीं हो सकते और जो हमारे ही समान राम-कृष्ण को पूजते हैं, उन्हें अपना इष्टदेव मानते हैं—दूर रहो, कहकर उसके साथ वमन-वस्तु सा व्यवहार करते हैं, वे धर्म-धुरीण जब टट्टी की ओट से निशानेबाजी करते हैं, तब तवियत भला उठती है और जी चाहता है, कि ऐसे समाज-धर्म ध्वंसकों को कच्चा ही चबा डालूँ। उनकी इस नीचता का विधिवत् दण्ड दूँ और दुनिया की आँखों के सामने इन धर्मध्वजियों (!) की पोल-पिटारी खोल उनकी भी आँखें खोल दूँ, कि देखो ! अपने धर्माचार्यों की यह करतूत ! ऐसा रूप ! किस तरह 'शूद्र न पूजिये चतुर-प्रवीणा' कहते चलते हैं, और किस तरह अपने मुँह आप जूते लगाते हैं। हमारे पण्डितजी का भी इन अभाग्य शूद्रों के प्रति वही "काका जपै सो हम जपै" वाला विचार-व्यवहार था। उनके भी विशाल हृदय के कोने में इन शूद्रों के लिये अंगुल भर भी स्थान न था। वे भूलकर भी सवेरें मंगी, डोम, चमार का नाम नहीं लेते थे। छुआ पड़ते ही "अपवित्रम पवित्रोवा" की ५०० बार दाँग लगाकर केवल एक ही निहम्न पानी अपने तगड़े शरीर पर उड़ेल कर पत्तन पवित्र हो जाते थे, नदी के माथे के निम्नुर आड़े में बार-बार कान धरना और भरना लोगों एक ही समान रीति-राज्य था। पर 'जोत' के तो इन्हें भड़ा धर्म्यम कर दिया था, इनकी सारी पण्डिताई और सफाई बर, एक ही- पर हाथों पाँव में लौट-पात हो जाते थे।

पण्डित जी तो इधर दूर तब तक उनके (अपनी माशुका के) क्षणिक रूप पैदा हो के आक्रमणों से परास्त थे। जानी मारी पण्डिताई और पवित्रताई का सत्ता अपने ही हाथों फाटने के छेत्तु छेत्तु पर शान दे रहे थे—और लौ जागकर कुर्बान हो रहे थे। और उधर तब बेचारी निर्दोष-नादान शूद्र-कन्या को पता तक न था, कि इस तरह उसके जेठे एक

काला-कलूदा, बूढ़ा टूँठ हाथ धोये पड़ा है, उसका एक-एक पल उसकी चिन्ताओं में ही समाप्त होता है।

\* \* \* \*

एक दिन पढ़ाते समय परिडतजी हम लोगों से बातों ही बातों में पूछ बैठे—“क्यों जी ! सचमुच मैं बड़ा कुरूप लगता हूँ ? क्या मेरे सब बाल सफेद हो गये हैं ?

किन भावनाओं से प्रेरित होकर परिडतजी ने विद्यार्थी-मण्डल के समस्त ऐसा मजेदार प्रश्न उपस्थित किया है ? यह कौमुदी-सूत्र की रटना में दिन बितानेवाले क्या खाक समझें ! परन्तु मैं झट ताड़ गया कि ये उद्गार उसी चोट के निवारणार्थ बहिर्गत हुए हैं, उन्नी बेचैनी के आसार हैं। मैंने कहा—“कौन करता है, तो आ कुरुन हैं ? और बाल ! अरे बाल तो आजकल के छोटकों के ही सफेद हो जाते हैं। अगर ऐसा ही है, तो विद्यार्थी—बीच में ही परिडत जी बोल उठे—“हाँ ! हाँ !! क्या तिजाव ! तिजाव !!....”

मैं—“नहीं-नहीं ! तिजाव नहीं, खिजाव परिडत जी।

पं०—हाँ जी ! वही खिजाव कल मुझे थोड़ा-सा ला दो।”

मैं—“बहुत अच्छा।”

दूसरे दिन मैंने काले खिजाव के बदले “नारङ्गी” खिजाव ला दिया। परिडत जी बड़ी खुशी से अपनी खोपड़ी पर उगे केशों को रँगने लगे, पर नारङ्गी रङ्ग देखकर थोड़ा भड़के और बोले—“अजी यह तो काला नहीं हुआ।”

“मैं—“जी जी ! लगे रंगरङ्ग मान बाल इसी “रङ्ग” में रहने चाहिए तो काले हो जायेंगे, यह “रङ्ग अस्तर” है।”

परिडत जी—“अस्तर क्या ?”

मैं—“जिस किताब रँगने के लिये “रङ्ग” का अस्तर” होता है।”

परिडत जी “खिजाव” किसे कहते हैं, यह भी न जानते थे, वह



तो खिजाव को तिजाव ही समझते थे। वे मेरे इस विज्ञानमय उत्तर को सुनकर चुप हो गये।

अब थियेटर के जोकरों की तरह सर और मूँछ को रङ्ग कर दिन में चार-चार बार बेकाम और बिना मतलब उस शूद्र-कन्या की गली में घूम-घूमकर अपने सौन्दर्य और मुखड़े की भलक दिखा आने की खन्ती इनके सिर सवार हुई। हमारे पण्डित जी को भी नारद बाबा के सदृश हठ आशा थी, कि हमारी सूरत देखते ही हमारी विश्वमोहिनी लोटन कबूतर हों, हमारे सुन्दर सुकोमल चरणों (!) पर आ गिरेगी और मैं अपने मन-मोहक रूप और प्रेमपूर्ण कटाक्ष से मिनटों में उसे मोह लूँगा। पण्डित जी ने द्धर दिव्य “वशीकरण” मन्त्र का जाप भी करना आरम्भ कर दिया था। मन्त्र की शक्ति और सूरत की खूबी के सामने वह जाती कहाँ है? इसी एँट में हमारे पण्डित जी मूँछें मरोड़ा करते थे। उसके सम्मिलन के भावी सुखों को मन ही मन अनुभव कर उछल पड़ते थे। मैंने दिल में सोचा—“तमाशा तो बहुत हुआ, पर अब बाबाजी को “पर दारा दखुता” और “सतीत्व संहारक” का सच्चा तमाशा दिखाना चाहिए। मगवान् विष्णु कथित “कड़ी नैयत” की बूँट उनके गले लगा कर चोट का असली मजा खलाना चाहिये—नर्ज की दवा देनी चाहिये।

\*

\*

\*

\*

एकाएक कमरे में प्रवेश कर शूद्र कन्या बोली—“लोजिये पण्डित जी! लखन बाबू ने कहा है, कि जरा इस भाजी को पण्डित जी को दे आ, मेरी फुलचारी की है, मैं इस समय काम से जा रहा हूँ।”

मैं झिपकर देल रहा था, कि पण्डित जी कैसे-कैसे रङ्ग बदलते हैं। पहले तो मेरा मास घुमते ही दिव में कट मरे, कि दुष्ट! मेरी सम्पत्ति पर दृष्टि लगाता है। पर एक क्लिष्ट में अतः भाव बदल कर

बड़े स्नेहासिक्त कण्ठ से बत्तीखों दाँत निपोर कर बोले—“ओह ! वह गया कहौं, व्यर्थ ही तुम्हें कष्ट दिया ।”

आशा तो यह थी, कि इस प्रकार दाँत निपोरने और ऐसे सुमधुर वचनों से, अवश्य कुछ मधुमय हास्य या हृदयहारक नैन परिचालन का पुरस्कार पाऊँगा, पर आशा-निराशा में बदल गयी । बिना कुछ कहे हँसे-मुसकाये रमिया चली गयी ।

मैं दूसरे दिन आकर बोला—रमिया तरकारी दे गयी थी पण्डित जी ?”

मन-ही-मन कुढ़कर पण्डित जी बोलें—“हाँ दे गयी थी ।”

पण्डित जी यद्यपि यह नहीं चाहते थे, कि उनकी ‘चोट’ का भण्डा-फोड़ हो । वे कम-से-कम मुझसे तो जरूर छिपाना चाहते थे, क्योंकि एक तो पर-स्त्री-भ्रमन का पाप, दूसरे वह शूद्र कन्या । इस ‘गुनाह वेलजत’ की खबर जब लोगों का लगेगा, तो जो कुछ उन्हें मिल जाता है, वह भी गप्पा के लिये बन्द हो जायेगा । मैं जानूँगा तो, एक म्यान में तो तलवार के तलवार खासी चहल-पहल होगी, और मैं पण्डित जी की पील भी खोल दूँगा । अस्तु, पण्डित जी ने अपने को बहुत समझाया, जबान पर लाख लगास लगायी, पर चोट ने उनके दिल पर ऐसी चोटें लगायी थीं, कि वे बेचैन थे, लाचार थे, थोड़ी देर बाद बोले—“क...क...क्या ?” पण्डित जी का कण्ठ शुष्क हो गया । आगिर पाप तो नष्ट हो जातू है, बिना बोले कैसे रहे ?

ये—“द्विजो कुलिन न होइये पण्डित जी ! वह “चोट” वाली आप से मिलना चाहती है ।”

आपे को सहिये क्या ? आम्बे ! पण्डित जी परम प्रसन्न हुए । वे इससे इतना तो अवश्य थे, पर भावना गुस्सुप न रह सका और मैं जान गया । परन्तु जब उन्होंने देखा, कि बिना मेरी सहायता के काम होना कठिन है, तब लपट हो गये । परन्तु कुछ देर बाद बोले—

“क्या कहा लल्ला ! तू मेरा विद्यार्थी है । मन तो कहता है, कि तुझसे दिल की बात न कहूँ ! पर देखता हूँ, बिना कहे काम भी नहीं चलेगा, क्योंकि “चोट” की भीषण पीड़ा सहते-सहते मेरा कलेजा छलनी हो गया है । वास्तव में मैं उसे हृदय से चाह.....” पण्डित जी के चेहरे पर अरुणाई आ गयी और उनकी बोलती बन्द हो गयी ।

मैं—पण्डित जी ! व्याकुल होने की बात नहीं । आप बहुत शीघ्र परम शान्ति प्राप्त करेंगे ।

पण्डित—“पर देखना भाई ! काम बड़ी सावधानी से हो, जिससे भण्डाफोड़ न हो जाये ।”

मैं—“नहीं, पण्डित जी ! आप निश्चिन्त रहिये । परमात्मा को भी मालूम न होगा, मनुष्य की कौन कहे ।”

इसे क्या कहूँ ? प्रेमावेश या पापावेश ! जो लोग गैर की बहु-वेष्टी की दुर्मत ‘प्रेम’ के नाम पर लूटते हैं, उसे पथ-भ्रष्ट करने के बहाने अपने को आशिक कहते हैं, समों के परवाने बनते हैं, आप भी जलते और उसे भी जलाते हैं फिर भी प्रेम ही प्रेम चिन्ताते हैं । क्या सचमुच वे प्रेमी हैं ? बात बड़ी सीधी है, इसमें मगज मारने की जरूरत नहीं ? दयालु कुपालु ईश्वर, भैरव और रुद्र का रूप धारण कर अपनी निष्ठा की रक्षा के हेतु अथवा संसार समाज में शान्ति स्थापना के लिये दुरी तरह से पाप का दण्ड देता है । अस्तु !

जो हो पण्डित जी कुछ तो मेरे कहने से और कुछ अपनी खूब-सूती और मन्त्रसिद्धि के बल पर यह भली-भाँति जान गये, कि वह मुझे चाहती है । मेरे लिये तड़पती है । इस तरह हमारे पण्डितजी अपनी वैभवा से अपने “प्रेम” का या “पाप” का बदला लेने के हेतु बह्म-परिक्लृप्त हुए ।

+ + + +

चोर ! चोर !! दौड़ो ! दौड़ो !! वे हस्ते से मल्ला पूँज उठा ।

कोई लाठी, कोई ईंट, कोई जूता—यानी उस धुन में जिसके हाथ में जो मिला, लेकर चोर को मारने दौड़ा। चोर पकड़ा गया। वह रामिर्षों के घर में घुसा ही चाहता था, कि वह जगकर चोर-चोर चिल्ला उठा था। बड़ी मार पड़ी। परन्तु जब लालटेन लेकर लोगों ने चोर का मुँह देखा, तो वे निकले हमारे चोट वाले पण्डित जी ! सब बोल उठे, “अरे ! यह तो संस्कृत के पण्डित हैं। हाय-हाय !! बेचारे सुप्त में पिट गये, चोर तो भाग गया।” पण्डित जी कराहते हुए बोले—“हाय रे मुझे बड़ी चोट लगी है” राम जाने, पण्डित जी दिली “चोट” की बात कहते थे या शारीरिक ! सुना, कि एक सप्ताह बाद उस “चोट” ने उनकी जान ले ली। वे चाट-चोट चिल्लाते स्वर्ग को या नरक को सिध्दार गये, यह जानने की उत्सुकता किसी ने नहीं प्रकट की।



## होला की हजामत

इस मौसम-बहार यानी “होली” में—“होली” के ही दिनों में सङ्कलित यदि एक भजेदार किस्म में गुजाऊँ अपने उन भोजन-जिज्वासीयों की, जो “कोठों” के शीतल, साजनिवों के बन्दा और अपनी आत्मियों के लावार बंधार हो, अपने आचरुषों पर अलंकार कर अपनी लोक्या हो बैठे हैं—तो शायद अप्रामादिक न दूना।

मेरे सहो के मशहूर बुजुर्ग मुंशी चित्तराज, जो महा “शमला” और गोपा से जीव रहते थे, और चिन कर्मी अपनी इस जेहाक के

अपने कुल ३१ तीन हाथ की बड़ी “बारादरी” के जीने से पेशाब करने भी नहीं उतरते थे—एक अजीबो-गरीब शरश थे। यों दुनियाँ उन्हें चाहे जो कुछ कह ले, पर आप, अव्वल नम्बर के शरीफ, तालीबुलइल्म, हुनरयाफ्ता और दौलतमन्द शरश थे। जैसे सिकखों का सर एक क्षण भी कंघी से खाली नहीं रहता, उसी तरह आपके भी गर्दम जैसे कर्णद्वय कण्डे की कलम से कभी खाली नहीं देखे गये। आप कहते भी थे:—

“कलम गोयेद के मन कहे जहाँनम्।

कलम कसरा बंदोलत मीर सानम् ॥

कलम कहती है कि मीर मैं हूँ” आदि-आदि। फिर ऐसी गुणागरी, सर्व-सौख्य प्रदात्री कलम को वे क्यों भूँ ? ... जी कचहरी के पैरोकार थे, जिन्हें सुख्तारों की दुम ... है, यागी सुख्तारों के छीने-भपटे से काश कुछ पैसे मुचकिलों के पास दचे, तो आप फट उन्हें “सोखत” कर लेते हैं, और धीरे-धीरे, जैसे अगम समुद्र सोख जते हैं। आपका परिवार विशेष बृहत् न होकर यहीं तक सीमित था। एक तो साक्षात् श्रीमान् मुंशी जी—दूसरे आपके सकल गुण गरिष्ठ सुपुत्र बाबू वेनीमाधव प्रसाद जी, जिन्हें कुछ मूर्ख लोग “मधउआ” कहा करते थे—और तीसरी साक्षात् जलिलुल्लाह साहब, परम कलह प्रिया, श्रीमती चिथरुआनी जी। ये तीन गुलज तीन शांतिवादी जहाँ समवेत होतीं, और इनके समागम, समिप्यता से उत्पन्न होता है जो तोपें बरसती कि “अंत्योदय” की तोपें समुद्री भी क्या आकर दस्तनी गरजती होंगी ? मुहब्बतवादी की सेवा जिन में “रेवोल्यूशन-एकतेशी” के राशि जागरण का प्रजापुत्र्य इन बहुल शांति-मन्त्रों के सुव्यवस्था से आज-ही आप भिल जाया करता—जिन तरंग-तुल और शकल-क के।

पर विचारें मुहब्बतवादी भी अन्ततः कितना पुण्यार्जन करते ? रोज-रोज यदि वे एकतेशी के राशि जागरण व्रत की ही उपासना किया

करें तो विचारे जियें कितने दिन ? और उनके संसारी कार्य हों तो किस प्रकार ? कुछ मुहल्लेदारों ने बहुजूर कलह-कट्टर ( कलेक्टर ) साहेब की खिदमत-आलिया में अर्जी पेश की, “हुजूर हम मुंशी चिथरूलाल के कुनवों के धोर कलहकाण्ड की भीषण गर्जन से आज अर्सा चार माह से नहीं सो रहे हैं, कोई मुनासिब इन्तजाम हो। हम अपनी जिन्दगी से बेजार हो रहे हैं।”

मुंशी जी तलब फरमाये गये। आलिया-अदालत ने कैफियत पूछी। मुंशी जी कोई गधेड़े तो थे नहीं, वे थे कचहरी के पुराने कुश्तीवाज ! बोले—“हुजूर हम सब शाम को जुटकर अपने घर के हिसाबों की जाँच-बूझ आपस में करते हैं, हम कोई “पॉलीटीकल” तकरीर तो देते नहीं, जो हमपर १४४ आयद हो, और मुल्तेवाले जैसे कोई वाजिदअली साहेब नवाब की औलाद हैं नहीं, जो हम आरमियों की आपा-पुआ बोल-चाल से इनकी नींद हराम होती हो। हमारे सामने मुक्त दूढ़े की तज्ज करने के लिये रां परेश रोज नदं हैं।”

मुहल्लेवाले ला-व चालते रहे—“हुजूर खुफिया तरह से पता लगा लिया जाय” पर “कैस” खारिज फरमाया गया, और एहार मुंशी जी मूँछों पर ताव देते घर चले आये। मुहल्लेवालों पर सार्पा धातू जम गई, और उस दिन से गर्जन-तर्जन में भी कुछ विशेष वृद्धि हो गई।

जमाना होली का था, मुहल्लेवाले जहाँ नुने थे ही, उन्होंने युक्ति से मुन्शी जी से पकड़ा लेना चाहा। एक ने कहा—“मुंशी जी आप पर एक तबाकत की जाल के जेदा है और आपकी आय में वैदान नहीं है।” मुन्शी जी ऐसी सुन-बदली सुनकर जेदाव हो दये, भट्ट शमशा खंखाला, गोसा महना और उनके साथ हो लिये। तबाकत नदले से ही ठीक थी, कहीं मुन्शी जी की खापी खातिरदारियों हुईं। रात में वहीं काटने की लय पायी।

उधर मुहल्ले में एक बड़े भ्रातृ हजरेभा देखने वाले आ गये,

दस बीस औरतें जुट पड़ीं और उस “ग्रूप” में श्रीमती मुंशिआईन भी। अनेकों के सही सही बिल्कुल दुरुस्त हाथ देखने के बाद उन हस्तरेखाप्रवीण ने उनका भी हाथ देखा, और वह बड़ी गम्भीर मुद्रा से बोला—“आज रात्रि को तो आपके परिवार में एक भयानक ग्रह आने वाला है।

—“दैव्यारे ! यह क्या गजब !”—मुंशिआईन जी चीख उठीं—“महाराज ! वह कैसा ग्रह है, और उससे बचने का क्या उपाय है ?”

“उपाय है, मैं बताऊँगा। आज रातको प्रायः बारह बजे एक पिशाच बिल्कुल नंगा-धड़ङ्गा, जिसका मुख आधा तो लाल और आधा काला होगा, आपके दरवाजे पर आकर ठीक आपके पति के स्वर में उसी तरह—जिस तरह आपके पतिदेव आपको पुकारते हैं, पुकारेगा, और यदि आप किन्नाड़ न भी खोलेंगी तो वह आकाश मार्ग से उड़कर आपके आँगन में आ खड़ा होगा। इस हेतु जब वह पुकारे, आप फौरन किन्नाड़ खोल दें। हाँ, दो बड़े-नट्टे “चैले” (फाड़ी हुई लकड़ी) आप सुलगाए रखें, जब वह पुकारे फौरन उन चैलों को ले उस पर दूढ़ पड़ें। देखिये याद रखिये यह कहेगा—“मैं तुम्हारा पति हूँ, ‘माधो’ का नाम हूँ, मुझे न मारी, मार में लालटेन लाकर पदधाना।” यह बहुत-बहुत आपके यह या परिवार सम्बन्धी पते की बातें कहेगा, पर सावधान, आप मारने में कभी रियायत न कीजियेगा, वरना आपका भयंकर अहित होगा। समझीं ?”

—“नहीं, महाराज, मन्ना हम उभ कलमँहे पिशाच को मारने में आँखें का नमकवत करेंगे। अफगान मेरे मासिक नदी हैं, कलबडर साहब ने एक रासिल की पानि में उन्हें झुलसिला भोज दिया है। शाम की हो तो हमसे कह कर गये हैं। फिर क्या पयसि ! हम भी घेते लत दाही-जार को पीटने के लिये काफ़ी हैं।

—हाँ, वही कह दिया ! हुशियार रहियेगा।”

—बहुत अच्छा महाराज !

इधर रात में मुंशी जी से वह तवायफ खूब गलबहियाँ डालकर बातें कर रही थी, मुंशीजी भी अपनी आशिकदिली दिखाने से बाज नहीं आये। सहसा एक बड़ा विकरालकाय जवान कोठे पर चढ़ आया, और उसने आते ही तवायफ को धक्के देकर गिरा दिया। मुंशीजी को भी तीन तमाचा खींच-खींच कर मारा, फिर उनका कान पकड़ कर झुकओरते हुए वह बोला—“मरदूद के बच्चे, तुम्हें मालूम नहीं यह मेरी है, यहाँ क्या करने आया? आज हम तुम्हारी नाक काटेंगे।” मुंशीजी केले के पात की नाई काँप रहे थे, सूरत पर हवाहवाँ उड़ रही थी, वे काँपते कण्ठ से, करवद्ध हो बोले—ह-ह-हजूर—हम बिल्कुल बेकसूर हैं! इसी ने....

—अबे चुप! बेकसूर का बच्चा! खैर तेरी इसी में है कि सारे कपड़े सीधी तरह यहाँ उतार दे।

—तो, तो, तो हम नंगे हो जाँय ?

—“हाँ! हाँ!! फिर बहस करता है!” उस जवान ने फिर उसका कान पकड़ कर बड़ी बेगहमी से हिलाया और बोला—जहदों कर !

मारे भय के मुंशीजी ने सारे कपड़े उतार दिये, पर बीती खोलने में बिचारे घबचपा रहे थे। फिर वह जवान कड़क उठा। क्या करते बिनारे “नगना बगान लग्या!” बिल्कुल नंगे और मादर जात नंगे हो गये। फिर उनके धून बांधे लाज और आबे काले रक्त से शरीर के जोरों की नाई रक्त गये। ध्यान पकड़ कर उठाना बैठाया गया, और गच्छियों से उतार कर वे सड़क पर ला जाये धर दिये गये।

सड़क पर जाते ही बिनारे सर पर गीँध रख कर फर की और बांधे और बड़ी घबराहट भरी आवाज में द्वार पर घुकारने लगे—मावों की भइतानी जलद फिवाक खोलो! धन! धन!! मर !!

इधर इन्तजार भी इन्हीं की थी, भाँकेडे वो दहकते हुए चले



लेकर लपके और क्वाड़ खोलकर बड़ी फैय्याजी से आपके सर पर वह जलता हुआ “चैला” बरसाने लगे ।

—“अरे अरे !! माधो की महतारी, अरे मैं—मैं हूँ माधो का बाप ! मरा—मरा—अब रुको, बापरे बाप ! अरे बेटा माधो, क्या तू भी नहीं पहचानता, आज ही तो तेरे लिये बाजार से होली के कपड़े लाया था—अरे हाय ! हाय !! मरा-मरा ।”

माधो बोला—“हाँ, हाँ, खूब पहचानता हूँ तुम्हें बेटा ! साला ब्रह्मपिशाच ! क्या महल्ले भर से कमजोर हमीं को समझ रहे थे, जो अपने बाप के घर की तरह चले आए । ले ले और ले दो-चार—आठ दस !

मुंशिआनी बोलीं—“हाँ, हाँ, लगा, लगा दाढ़ीजार को, बाबाजी ने ठीक ही कहा था—सारा पता देगा और ठीक-ठीक, वह नहीं समझा कि हम ब्रह्मपिशाच के भी पीर हैं । ले रौंड़ के पूत और ले, सात आठ दस ।

अब मुंशीजी बेतरह चीखने लगे, मुहल्लेवाले दूट पड़े, देखा तो एक नङ्ग-धड़ङ्ग पर चैलों की घनघोर वर्षा हो रही है । लोगों ने पूछा—“क्या है ?”

मों बेटे एक साथ ही बोले—“यह ब्रह्मपिशाच है, ननू प्राया तो था मेरा सर्वनाश करने, पर हम सब इसी के शनाना उतार रहे हैं ।

मुंशी जी विचारे काफी पिट चुके थे, और थे बूढ़े आदमी ! लोगों को उनकी हालत पर बसी दया आई ? एक बोला—अरे भूतों की परछाईं नहीं होओ, पर इज्जती तो हो । जग लालदेन लेकर गौर से देखो ! जन लाजदेन आई तो लाजानश मुंशीजी ने फिर एक बार यह प्रवेश कर जोर लगाया, पर भी चार घंटे के सक्के खाकर कारा खाने चित्त गिर पड़े ! आखिरत में पड़ा—अरे ! ये तो गनपच मुंशी जी हैं, न जाने बेचारे की कतने बुरा होली में ऐसी हजामत बनायी है ! मों-बेटे मुंशिआनी ले पड़े ! स्वस्थ होने पर मुंशी जी को सारे

षड्यन्त्रों का पता लग गया, और उन्होंने उस मुहल्ले को सदा के लिये त्याग दिया।

अब भी जब कभी श्री मुंशीजी से इस मुहल्ले के लोगों की मुलाकात होती है, तो कतराकर बच निकलते हैं, पर लोग क्यों मानते—सलामी दागकर ही उनका पिण्ड छोड़ते हैं, क्योंकि इसी “सलामी” में तो “होली की हजामत” का इशारा था।

६

## जिन्दा भूत

लड़कपन की तुतली और कठिन शब्दों से अनभिज्ञ होने के कारण, अक्सर हमलोग शुद्ध शब्दोच्चारण में गड़बड़ा जाते थे। “काफ” को “गाफ” और “हमूज़ा” को “हजमा” कह देते, फिर तो हज़रत मौलवी साहेब के गुस्से का पारा अकाश की शैर करने लगता। बदत-मीज, कुन्दजेहन, बदशाउर की बौछार-वर्षा के साथ ही दर्जनो छुड़ियों और थण्डों से हम लोगों के कमोल-कनपटियों, और पीठों की खबर ली जाती। पहले क्या थाक, उनकी सूत देखते ही हमलोगों के देवता क्रुन कर जाते। मारे रस और श्रावक के दग पर दग हमलोगों को पेशाब ही जारी रहता। दग छोटे छुचमौं के बच्चों को इश कदर जेरहमी से गार-गार कर, तगपर इन्दानि अपना दास बना रखा था।

बूढ़ और जर्जर होने पर भी, उनकी वह आँखों का सड्डू और पिचके गालों का गड्डा कर्ण सुभ और गिल्लीरियों से सगली नहीं रहता।

खोपड़ी वे हर जुम्मे को उस्तरे से साफ कराते, और तोंद तक लटकने वाले अपने लम्बे “दाढ़म दाढ़ा” को नारंगी रंग से पेन्ट करते। पैरों में वह बड़ी फान का पायजामा पहनते थे, जिसमें बकरी के दो बच्चे आसानी से छिपा दिये जा सकते थे। बदन पर डबल “घोंघरेदार” हाजीनुमा कुर्ता पहनते, जो उनके उस कुम्भकर्णी काया को गले से लेकर पिंडलियों तक को तोषे रहता और कभी-कभी जब हवा उस ‘घोंघरेदार’ कुर्ते में घुस जाती तो घन्टों उसी में बिलबिलाती रहती, और उसकी बिलबिलाहट से मौलवी साहब का वह “पौरियानुमा” कुर्ता, पैर की ओर से थोड़ा उठकर चैरागियों की बड़ी छुन्नी “मेघाडम्बर” का रूप धारण कर लेता। उस समय श्री० मौलवी साहब ऐसे सुशोभित होते, जैसे वे किसी महफिल में पूरे पैमाने से “छूम-छूमनन” कर रहे हों और ताबड़तोड़ चक्कर काट रहे हों।

सुर्गों की वाङ्म सुनते ही आप विस्तर छोड़ ऊँटों की तरह पश्चिम की ओर हाथों में बँधना डोरी लिये भागते। फिर नित्यक्रिया से निश्चिन्त हो, नाश्ता पानी से छुट्टी पा हमलोगों के कपार खाने जुट पड़ते। निखटू तो ऐसे थे कि न किसी से जान-पहिचान, न किसी के घर आना-जाना, वारही चण्डा हमलोगों को रटाते रहने। घोखो और खुल बोमी (गश्क-कण्डुस्य कती) हाथ पैर तोड़कर एक जगह बैठे-बैठे, नीनानों का तरह झूम-झूम कर “अलिफ” “ने” का गले के नीचे उतार जायें। छुट्टी के समय इनकी खिचतें फगे, जब कभी दम की कुरीत नहीं। पड़ते पड़ते—रटते-रटते कण्ट सम्मने पर जरा रुक रही, या काम करते-करते थक कर मानक दम लां, लों,—बापरे—! बीस वर्षों की तुमल भल्ली! और, किसी तरह कुछ दिनों तक हमलोग मौलवी साहब के इन गादिरशाही जुल्मों का बदर्शित करत रहे, पर कितना बदर्शित करते, मनुष्य होने के नास्स इस मनुष्य व्यापार से ऊन उठना भी अवश्यमभावी था। आखिर एक दिन हमलोगों की “धुम सगिर्गि”

की पहली बैठक हुई, जिसमें सर्वसम्मति से यह निश्चित हुआ कि 'किसी तरह इस नर पिचास मौलवी को भगा दें'। कार्यक्रम का भार, क्रम से शंकर, श्याम, खुबेर और मुक्तपर पड़ा। शंकर हम सबों में बड़ा था, और था अव्वल दर्जे का शरारती ! रोज ही उसके दिमाग-जौहर से नई-नई बदमाशियाँ ईजाद होने लगीं। मैं सबों से छोटा था, इस-लिथे मौलवी साहब मुक्तपर बहुत कम सन्देह करते। इस हेतु आविष्कारकर्ता ने लोग और कार्यकर्ता मैं नियुक्त हुआ। कार्यक्रम जोरो शोर से कार्यरूप में परिणत होने लगा।

एक दिन हमनों में का मौलवी साहब उर्दू की बरतावनी पढ़ा रहे थे !—मजा तो यह कि कम्प्लैट पढ़ाता बहुत कम—पान लाओ, विलम लाओ, बर्तन मलो, पायनाभा भाप बाग, विस्तर लगाओ, अजी साहब, कितने कामों को गिनाऊँ, आसमों के सितारे गिनने आसान हैं, हमारे मौलवी र... .. एना के सामने। हमारे दिन उनकी निदमतागारी ... .. कुल्ल पढ़ा दिया तो पढ़ गये, तिसपर भी सबक याद न होने पर छड़ियों की महामार से पीठ बिचारी को पिलपिली कर देता।

शङ्कर के कान जोरों से उमोठकर मौलवी साहब बोले—“जाओ बदमाश सड़ा !” तब तो हजलोंगों के ‘राशि’ नाम थे—“जल्द पान लाओ।” शङ्कर निचला जम-ही-गम गैकड़ों गालियों बरसता, अपने कान पकड़ता चला गया, और भाड़ों देर में भी लज्जा-दमक बीते गये। मौलवी साहब अपनी लावनी नगिनिका फिलोस कर अपने लक्ष्य दक्षता में तामकल बनाने करने लगे। प्रत्येक पल भर वाद उनकी बेसी आँखें, राविन्द जल के सूख हो गईं और वे सतमाले हाथियों की नाईं भूमने लगे, फिर वे बड़ी नदैन से बोले—“अरे, देखो-देखो बड़ा नजब हुआ, मेरे सोपड़ में जैसे आग मलग रही है। कमबख्तों, जल्द, बहुत जल्द बुझाओ ! बुझाओ !! हजलोंगों ने

भी इस नायाब मौके को हाथों से निकल जाने देना मुनासिब न समझा। लपक कर खोपड़े के निकट दौड़े, कहाँ आग और कहाँ पानी। मगर हम, सब-के सब बेहद घबड़ा कर एक ही स्वर से बोल पड़े—“ओफ हो ! अरे गजब हो गया मौलवी साहब ! आपके सर में ज्वालामुखी फूटना चाहता है।”

—“अरे जल्दी कर नामाकूल !” बौखलाए से मौलवी साहब बोले।

फिर क्या था, आग बुझाने के लिये उस छिली-छाली खोपड़ी पर तड़ातड़ चाटें बरसने लगे। इधर चाटें की गर्मी, और उधर ताम्बूल मिश्रित धतूरे के बीज की गर्मी ! घृताहुति हो गया। मौलवी साहब झपटकर दालान के आँगन में आए और लगे दनादन अपने कपड़ों को उतार-उतारकर फेंकने। सिर्फ एक लुङ्गी कमर में लपेटे वे जेठ के कुत्तों की तरह हफर-हफर हाँक रहे थे। मारे गर्मी के उनके आँठ कण्ठ छूटकर लोंठे हो गये थे। “उफ ! उफ !! वो आया, वह भागा, आ हः हः हः” अत्याधिक अनर्गल आलाप करते, पागलों की नाई सारे आँगन में वे चकर काट रहे थे। लोगों की ठट्-सी लग गई। इसी मौके पर मुहल्ले के दो-चार बदमाश लौटे हुए पड़े और वे लगे मौलवी साहब पर धूल काँक काँकवात गायन। उन लोगों भला क्यों चूकते ? हमलोगों ने भी अपने-अपने को निश्चयत ठंढा किया। तीन दिन तक नशे की खुमारी गनी रही। इधर दूधवालों ने अपने माता पिता और दौलतों मुहल्ले में वह प्रचार कर दिया कि—“मौलवी साहब पर बड़े पीर की सत्राय आती है, और अक्सर इनकी हालत ऐसी ही हो जाया करती है।” बड़ों बुढ़ी हुई, चोरी भी गी, और बेवश बच्च भी निकले।

जैसे राज हम लोग मौलवी साहब के लारवे पेश किये गये। मौलवी साहब हमलोगों की सूरत देखते तः आग न्यूला हो निझा पड़े—“बदमाश के बच्चों ! ठहरो-ठहरो, तुम लोगों की हजामत बनाता

हूँ, लाओ, सबक सुनाओ!” हमलोग अत्यन्त नम्रतापूर्वक सहानुभूतिपूर्ण स्वरों में बोले—“हुजूर आज चौथे रोज, हमलोग हुजूर में हाजिर हो रहे हैं। उस रोज जो हुजूर पर बड़े पीर की चढ़ाई हुई थी, उसके तर्ह हमलोग अफसोस—सद्-अफसोस जाहिर करते हैं और साथ ही बड़े पीर को भी लानत-मलामत भेजते हैं कि आप जैसे एक बुजुर्ग शाखश को इस बुढ़ौती के जमाने में बड़े पीर को इतना तज़्ज वो तकलीफ देना हरगिज लाजिम नहीं था।”

“जी अच्छा, आपकी इस हमदर्दी के लिये मैं भी बेहद शुक्र-गुजार हूँ और तुरन्त ही आप पर भी बड़े पीर की आमद होती है।” कहते हुए वह हृदयहीन मौलवी दानवी चीत्कार मारकर हमलोगों पर भूखे बाघ की भाँति दूट पड़ा, और हमलोगों के कान पकड़-पकड़ कर बटेर-बगरे की तरह जमीन पर घटकने लगा। गैनी केहुँनी झिल गई, शमाबू का बट्ना टूट गया, शङ्कर का सर फूट गया। मुझे रोते देख मेरी रज़ीज़ी बढ़ी मुझे झुप कराने के लिये मेरे पास आई। उसकी मोहनी मुझ के अँदरे ही जमाना मौलवी पाहव की लार टपक पड़ी। मैंने कर्नालियों से देखा, मौलवी साहब उन्हें मुहब्बत पूरी निगाहों से घूर रहे हैं। उनकी झुंझागुन सूरत की जले ताँत की तरह मनपर आल हो गई थी। वे बड़े रसमरे कण्ठ से विद्रोह गरीबी आवाज़ में बोले—

“ग़ाओ, ख़ौद रे सदा हूँ, मुझ भय-के-खय फाँटे जिंदाई और शेखान हो।”—इसकी आवाज़ में मौलवी साहब की जख्म करती हुई लगी गई। सब तो मौलवी साहब हठके पीछे बेतुह पड़े। सबो की मुट्ठी केन के बार की मुँके विद्रोह रहे। मैं मन-हो-मन ईश्वर की याद करता रहा—“वा गैर मजलान बनाहये इक सख्त हो।” मारे डर के मैं भूखकर या अछुल का हो गया था। किन्तु बाव दूसरी ही थी, मौलवी साहब बड़े प्यार से मुझे झरने निकट विद्रोह बोले—

“बच्चू अब हम तुम्हें कभी नहीं मारेंगे, कावेइल होकर कहते हैं।

मगर—ए-ए एक-एक बात—( इधर उधर देखकर ) देखो एक बात है, खबरदार किसी से कहना नहीं अच्छा ! समझा !” मैंने धीरे से स्वीकृति सूचक सर हिला दिया । अब मौलवी साहब बड़ी प्रसन्नता से मेरी पीठ ठोकते हुए बोले—“सुनो, यह जो तुम्हारी दाई है न, रङ्गीली, इसे तुम रोज मेरे नजदीक किसी-न-किसी वहाँ ज़रूर भेज दिया करो ।” “जी अच्छा !” कहकर मैंने अपनी किताबें उठाईं, और मन ही मन भगवान को असंख्य धन्यवाद देता हुआ घर की ओर भागा ।

उस रोज रात को मौलवी साहब के खाने की बारी मेरे ही यहाँ थी । शङ्कर खाना लाने गया, और मैं दस्तरख्वान बिछा रहा था । इतने में शङ्कर खाना लेकर आया और मुझे थाल थमाकर आप पान बनाने चला गया । मौलवी साहब चटपट हाथ सुँह धो, बजू-बगैरह से पाक परागत हो दस्तरख्वान पर आ बैठे, और तावड़तोड़ चम्मच से दाल, भात में उलीच-उलीचकर लगे हीँड़ने और बड़ा बड़ा कौर मुख में धकेलने । पर यह क्या ? एक ही क्षण के बाद “ओ-ओ” कर सब भात फेंकते हुए बोले—“अख्द ! अख्द ! नमक—! नमक ! अख्द इतना तेरा नमक ! सारा खाना लहवा हो गया है ।” ( घर से खाना लाते हुए रास्ते में शङ्कर ने दाल में एक मुठी नमक छोड़ दी थी ) मैं तो इस कदर सिट्-पड़ा, जैसे शेर की दंभका बकरी । कहीं मुझपर ही मौलवी साहब न बिगड़ें कि इसी की शरारत है ! हाय-हाय !! हुआ भी वही, शैतान अपने वादों को भूलकर दो कोड़ी मुझे और साढ़े सत्रह गण्डे शङ्कर को चपतें लगा दी । फिर तो बेतरह आम भड़की, हमलोग तो घर भागे, और इजरात मौलवी साहब ने अल्लाह-अल्लाह कर रत काटी ।

मेरी दाई रङ्गीली पटने की दाइयों में से थी । वह निरपेक्ष नहीं बड़ी साझियाँ पहनती, इधर-उधर इठलाती फिरती थी । हमलोनों की “सामति

की दूसरी बैठक हुई, जिसमें यह तथ पाया कि हमलोग रङ्गीली के द्वारा इस शीतान को यहाँ से भगा दें।” हमलोगों ने दो-चार पैसे के लोभ-लालच दिखा रङ्गीली को हाथों का खिलौना बना लिया। फिर तो वह एक-एक इशारे पर सौ-सौ करामात दिखाने लगी। हमलोग हमेशा उसे मौलवी साहब के पास भेज दिया करते, और वह उनसे भी तरह-तरह की बातें बना, चौचले दिखला, कुछ जट ही लाती।

बाबू जी किसी कार्यवश छुपरे गये, और इधर हमलोगों को सोलह आने आजादी मिल गई। फिर क्या था, “समिति” ने इसी रात्रि को अपने स्वीकृत प्रस्ताव को कार्यरूप में लाना चाहा। रङ्गीली को बुलाकर सारा प्रोग्राम उसे समझा दिया गया। १) ५० नकर पेशगी देकर कहा गया कि काम होने पर ५) ६० की साड़ी इनाम में और दी जाएगी। रङ्गीली परग सन्तुष्ट हो हमलोगों के कार्यसाधन में जुट पड़ी।

दोपहर-दोपहरे रात्रि हो गई। शुभ्र चन्द्रलोक में चँदनी उतरगयी रही थी। रङ्गीली पृथ्वी की गोद में, सुन्दरी उवाहना बाँट-बाँट कर निहाल हो रही थी। जमाना गर्मी का था, हमलोग बालान के आंगन में खाट बिछाकर डट गये। हमलोगों के बगल में ही हजारत मौलवी साहब की खाट बिछी थी। गगनलोपरान्त मौलवी साहब भी अपनी खाट पर डेर हो गये, मगर हमलोगों को मौलवीगर्मा उन्हें शक नागवार मालूम हुई, अतएव वे कुछ प्रेममिश्रित क्रोध से बोले—“बच्चू! तुम यहाँ क्यों भोचें हो? जानते नहीं तुमलोग अभी बिल्कुल नादान बच्चे हो। परेशान बाहर राना, रात की सुनाम, जिजाती के सफर का वक्त, अगर कुछ हो अगर तो पारी सुश्कल होगी। हमलोगों का क्या? बड़े आदमी पके आदमी हैं, कब फिर पढ़ेंगे, क्या ठिकाना! जाओ तुम लोग घर में जाओ।”

मने नाफते कलह से कहा—“डुअर मों से कहा है, बाबूजी छुपरे



गये हैं, दरवाजे पर कोई नहीं है, तुम शंकर वगैरह को लेकर दरवाजे पर सो रहो।”

अब भला माँ के हुक्म के खिलाफ मौलवी साहब के पीर को भी बोलने की हिम्मत न थी। हालते मजबूरी में क्या करते, विचारे चुप रह गये। हमलोगों ने कुछ देर बाद बनावटी खर्राटे भरने शुरू किये। एक-एक करके एक घण्टा बीता, दो घण्टा बीता, न जाने क्या मौलवीसाहब मन ही मन बुदबुदाते रहे, फिर कुछ जोर-जोर से बोलने लगे—“हैं ? कमबख्त, अभी तक लापता है, आज सबेरे ही दो रुपये ले गई, और इन्शाअल्ला आज अगर न आई तो फिर ऐसा नाथाब मौका मिलने का नहीं। ऊफ ! अब तो मिनट-मिनट की भी देर बर्दाश्त नहीं होती, सचमुच सुसरी इन्तजार बड़ी बला है।” मौलवीसाहब मन ही मन इन्तेजारी का रोना रो ही रहे थे कि इतने में छम्-छम् करती हुई रंगीली लचकती मटकती आ पहुँची। अब तो सुराब बर आयी, और हमारे मौलवीसाहब जमीन से ही बहिश्त के मजे दोनों हाथों लुटने लगे। बड़े प्यार से उन्होंने रंगीली को बुलाया। रंगीली ने भी जरा इधर-उधर लचक कर इन्हें बेचैन कर दिया। हमारे मौलवीसाहब रंगीली के विशेषाग्रह से बिल्कुल नङ्गे बदन कोठरी में बसे। रंगीली थोड़ी ही देर बाद बाहर निकली। जल्दिय चढ़ाकर हमलोगों के निकट आई, और हमें सानसान कर धर भायो। सामान दुश्का है, यह जानकर हमलोग बड़े प्रसन्न हुए। फिर पहले के निश्चयानुसार श्यामू बोली—“अब सुनो दो कुतलोग, मौलवीसाहब यहाँ पर नहीं हैं, न जाने कित्तर को चले गये। अब यहाँ हमलोग जाली मुधमूँहे बंधे रह गये हैं। मौलवीसाहब पर बड़े पीर का साथ है। उन्हें भूत-भविष्य सब भासता है, जल्द आज कोई जान आने वाला है, तभी वे यहाँ से चले गये हैं ताकि उनपर कोई इल्जाम न लगे। मेहर है हमलोग भी बलकर घर में जा रहे गाँ, नहीं तो न जाने क्या हो ?

इतने में रघुवर घबरायी हुई आवाज में बोल उठा—“ए—ए—!!  
अरे देखते हो कुछ ? खपरैल पर चुड़ैल बैठी है ।”

“हाय ! हाय !!” कर मैं चीख पड़ा । सबके सब घबरा उठे,  
और सामान ले-लेकर घर भागने लगे । अपने तो अपने, मौलवी  
साहब के भी सारे विस्तर कपड़े, यहाँ तक कि चौकी का टाट भी सब  
एक-एक घर में रख दिये । अब मौलवी साहब हमारे इस भयानक  
पड़यंत्र से बेतरह घबराए—“या खुदा, यदि मालिक कल सबेरे छपरे  
से आयें, और मुझे इस हालत में देखें, तो कौन सी जिल्लत उठानी  
पड़ेगी, अल्लाह ही मियाँ जानें ?” बिचारे मौलवी साहब बड़ी ही दीनार्त  
वाणी में गिड़गिड़ाकर बोले—“शंकर बाबू ! अरे—ए—बाबू शंकर  
प्रसाद ! अजी मैं यहाँ हूँ, इस कोठरी में बन्द हूँ । भाई, खुदा  
हाफिज ! मुझे किसी तरह बाहर निकालो ।” शंकर हँसी रोक के कड़क  
कर बोला—“कौन है वे ! बेहया चोर ! साला भूत, मैं तेरे को खूब  
पहचान रहा हूँ ।”

मौलवी साहब पुनः उसी खर में बोले—“अरे भाई मैं-हूँ, मैं  
तुम्हारा मौलवी, गुलमुहम्मद, न जाने किस शतान में मुझे सोते से उठा  
कर इसमें बन्द कर दिया है । आह मारे गर्मी के दम छुटा जा रहा है ।  
मेरे प्यारे बच्चों ! मैं कसम खाकर कहता हूँ, अगर आकर मुझे इस  
आफत से उबार लोगे तो ताउम्र तुम लोगों के गुन गाऊँगा और ब-  
खुदा कभी एक दूब के तिनके से भी न छूँगा ।”

शंकर—“अच्छा, यदि आप हमारे मौलवी साहब ही हैं, और  
इसलोक हाइके आदमी लग रहे हैं तो जैसे आपने इतनी देर तकलोंग  
की दो बार निवृत्ति और तर्कित, हमलोक मुहल्ले के दो बार आदमी  
की सुलालें ।”

मौलवी साहब बेतरह घबराये से बोले—“अरे हाय-हाय !! तुम क्या  
करते हो, क्या मेरी आवाज भी तुम लोगों से पहचानी नहीं जाती ? ब-

खुदा, मैं तुम्हारा मौलवी हूँ आज मैंने तुम्हें “गुलिस्ता” पढ़ाया है। खोलो-खोलो जल्दी करो।”

श्याम उपेक्षापूर्वक शंकर से बोला—“अरे यार किस चक्रमें मैं पड़े हो। भूत प्रेत इसी प्रकार झूठ-मूठ निशान-पते बताकर लोगों को पकड़ते हैं। उन्हें सब बातें मालूम रहती हैं, आज बड़े मौके से जीन हाथों आया है, चलो लोगों को बुला लावें।”

रघुवर ने कहा—“भाई शंकर! श्याम सोलह आने सच कह रहा है। हलखोरिया की भाँ को इसी तरह झूठ नाम-पता बताकर ब्रह्मपिचास ने धर दबाया था, बगैर लोगों के बुलाए, प्रेत के कहने के बहकावे में आकर किवाड़ खोल देना खतरे से खाली नहीं है।”

शंकर—“तो चलो मुहल्ले वालों को बुला लाएँ।”

सब—“हाँ,हाँ, चलो चलो।”

हाय हाय! मौलवी साहब तड़तड़ किवाड़ के पल्लों को पीठ-पीठ कर दुहाई देने लगे। कई बार “कुरआन” की आयतें बड़बड़ा गये। किन्तु सब बेकार, छोटे दिन में अमृत भी विष हो जाता है। आवाज देते देते बिचारे का कंठ सूख गया। किन्तु दुनिया हीन? रसीली के स्पर्श का पाप, हम निरीह शिदोंन वालों पर नज़रों पतलवार के पाप, सब एक ही साथ फूट पड़े। देखते-देखते लोगों की पायों नीचे इकट्ठी हो गई। “कहाँ जिन है! किधर भूत है!” का गगनचर्चा बुलबुल मच गया। निदान कौठरी का किवाड़ा खुला, और उसमें से एक लम्बा-तड़झा नज़रबंद, दाढ़ीवाला महापुरुष निकला। “मारो-मारो” बड़ा जबरदस्त ज़िह है! बिना भारे न झुंझा।” एक ही साथ बीसियों कण्ठ से यह लज्जकार ध्वनि निकली। मौलवी रघुवर कौठरी से निकलने की आगामी आवाज़ की आँसु कपड़े पढ़ने के लिए माने, किन्तु नहीं उन्हें कपड़ा नहीं मिला, तब बिचारे हल्ला हो पायल की तरह कपड़े की नज़ाश से दूर उधर भागने लगे, सब वहाँ तो काला क्या पाँव मल का पाया

तक हमलोगों ने नहीं छोड़ रखा था। इतने में हमलोग चिल्ला पड़े “हाय-हाय भूत भागना चाहता है।” फिर तो भुरग के भुरग लोग उन पर टूट पड़े, और इतनी मार पड़ी की मौलवी साहब चिन्न हो गये। सब लोगों के चले जाने के बाद मौलवी साहब ने मुझसे कहा—“बच्चू मेरी लुङ्गी ला दो।” मैंने लुङ्गी, आइना और लालटेन लाकर मौलवी साहब के सम्मुख रख दिया। जब आइने में मौलवी साहब ने अपनी सूरत देखी तो बड़ी आनरनापूर्णक बोले—वेशक रङ्गीली ने मेरी सूरत “जिन्दा भूत” की तरह बना दी है। अपनी मर्यादा और गौरव के विरुद्ध चलनेवाला और बेकार विद्यार्थी, बच्चों पर जुलूमों-सितम करनेवालों का यही मत होता है। फिर वे करुणार्द्र हो रुदनास्फुट स्वन में बोले—“आगे बड़े मुझे भयानक करना, मैं चलता हूँ।” और वे चले गये, तब से आज तक न आये।

यह “जिन्दा भूत” की कल्पना भगवान और विनोदी होने पर भी कितनी दयनीय और करुणापूर्ण है।



### अथय अतियोगिता—

“आजारे मुहम्मद से लिखा है यदार्थ, वह गलत न दिलायें।  
यह गलत तो है कि न इसकी कोई दया है, बेकार दोआ है ॥  
(कोई अज्ञात कवि)

और आजारे मुहम्मद से भी कहा है “प्रति करी कदू जुल न

लख्यो।” किसी बड़ कवि ने भी कहा है “के बोले, जे पीरिति भाल” इसी प्रकार और कितने बड़े-बड़े महापुरुषों, महात्माओं और कवियों ने भी “प्रेम” को या इश्क-मुहब्बत को सर्वथा निम्न, निया और त्यक्त ही बतलाया है। मगर ताज्जुब यह है कि इस अनादि काल से सतत भर्त्सित, निन्दित प्रेम का एक छत्राधिकार, दुनियाँ जब से दुनियाँ के रूप में प्रकट हुई, तभी से जमा-जमाया चला आ रहा है, और निन्दाओं की गोलाबारी इसके मजबूत किले की एक ईंट भी उस से मस न कर सकी। दुनियाँ की हर तवारीखों के पन्ने पर चाहे वे पुराण शास्त्र के नाम से प्रसिद्ध हों, या हदीस इंजील के, सब में इश्की दुनियाँ की सुखद और दुःखद चर्चा जरूर है। हम देखते हैं दावागि को भी पलमात्र में निगल जानेवाले ऋषि और पुरन्दर को भी परास्त करने की शक्ति-सम्पन्न महाराजधिराज, “विश्वमोहिनी” “मेनका” “शकुन्तला” और “कैकेयी” को इश्क में अपना आपा खो बैठे हैं। वीर नेपोलियन हेलन को इश्क में बेजार था, तो मुगल सम्राट् जहाँगीर “नूरजहाँ” पर बेकरार था। यह आतिशे-इश्क जो बाबा आदम और हौआ के समय से सुलगती तो आज तक न बुझी और इसमें मूर्ख विद्वान, गुसी-अगुणी, सब जले, सब जूसे।

लेहजा ऐसी प्रचण्ड शक्ति-सम्पन्न, महागठित गहिमा-प्रसूत प्रेम के चपटे में यदि गुंथी चन्दाशाल जो पड़कर रमाली लाचार हो जाएँ तो कोई ताज्जुब और शमे की बात नहीं है। हाँ, दुनियाँ नुस्ताचीनी करती ही है, नर इन्हे में भी कंकड़ ढूँढ़ा करती है, पुरण में भी पाप खांज मारती है। मगर इसका एलाज, दुनियाँ वालों की इस वेढझी भयजमायी का प्रतिकार गुंथी नवारीलाल के पास था ही नया, एक अदम्य प्रणय-योद्धा की तरह इनकी “चौय-चौय” इस कान से सुनकर उस कान से निकल देते और बैठे नरत भजराज कुत्तों के “भौ-भौ” की कुछ भी पर्वाह नहीं करता, ज्यों प्रकार वह प्रेम का हस्ती भी

दुनियाँ वालों की “टॉय-फिक्स” की पर्वाह नहीं करता—और प्रेमीजन करते भी नहीं।

दुनियाँ वालों का उनपर यह “रिमाक” अथवा यह कलाम कि “८० और ५ = ८५, वर्ष की अवस्था में इश्क करना पक्की शैतानियत है, चूँकि यह वक्त तो यादेखुदा का है” सरासर रहो-वातिल है। इश्क का न कोई खास समय निश्चित है, न अवस्था, वह तो एक बीमारी है, चाहे जब छू जाए। फिर माननीय मुंशी जी के शब्दों में—“उनका न शरीर बूढ़ हुआ था न हृदय!” उनमें तो अभी बही हसरतों का हजूम, तमन्नाओं का तार, अरमानों की भीड़ सोनपुर के मेले की तरह लगी है।

कुछ लोगों का यह आरोप है कि यदि उन्हें आशिक ही होना था तो किसी हसीन, खूबर, और रूखेअनवर पर होते। यह, बम्बोलिया दुसाध की बेटी “रमकलिया” जिसका नाम राम—मुँह कुकुर ऐसा” का संप्राण प्रमाण है। गिलहरी को पूँछ जैसे छोटे रुखड़े और मैले केश, जिसमें “ढील” और “चिल्लरों” ने बादसुदत से अपना बसेरा बनाया है, बेजुबानी जैसी छोटी और धँसी आँखें, गिनके दोनों कोर में शाश्वत काल से कीचड़ों ने अपना अड्डा जमाया है, रूखों की “टाँ” की तरह चिपटी नाक, जिसमें सदा श्वेत मुक्ता-सा बुलाकवत “नेदा” लटकायमान रहता है, नाटी-खोटी, काली-कलूटी, जब उसके कोयले की तरह काले मुखड़े में चिपके होठ खुलकर हास्य की अरुणाभा फैलाते हैं, तब यालूम होता है, जैसे रिकिंग मुसल गद्दी हो। विश्व समन वर अपने दादु-मूल तक सीमित कुत्ते हैं—जिसे “मुला” कहा जाता है—साबूतान के बुरख नन्दे-नन्दे ताने वाले सुन्द-मुन्दे चिल्लर सत्त्वदाँपियों को नाई, एकामंचित और वैज्ञानिकों की तरह चमक हो डूँढ़-डूँढ़कर उन्हें कुत्तियाँ पुलिस की मौत मुतपेस सिगस्तार करती हैं, और अपने नाखून का अश्रुमि में नारिस्ताह सा

कत्ते-श्राम करने लगती है, और अपने इस कार्य साफल्य एवं विजयो-पलब्धि पर घोर हर्षातिरेक से वह परम विह्वल हो “ही-ही-ही-ही” कर, वही टिकिया सुलगने की नयनाभिराम शोभा उपस्थित करती है, उस समय दुनिया वाले मारे घृणा और नफरत के नाकें सिकोड़ कर, उसकी ओर से निगाहें फेर कलेजे का थूक हलक में उतार कर बड़ी जोर से—“आख्-आख्-थूः—!” करते हैं। पर इसके लिये मुंशी चमारीलाल क्या करें ? मुझे फिर उनके लफ्जों को दुहराने की मजबूरी हुई—“यह दुनियाँ वालों के दिमाग की खराबी ही है, जो अच्छी चीज उनकी पहचान में नहीं आती।”

“रमकलिया”, १४ गिरह अरजवाली जापानी साड़ी, जो उसकी फिज्जी से डेढ़ बालिस्त ऊपर को ही रहती, जो इसके शरीर पर सुशोभित होने के दिन से, फटकर चिथड़े के रूप में होने की अवस्था तक, जो बीबी के “पटक-पटक” और “भट्टी” की आँख और जाड़े के जल की मुसीबत से बराबर वञ्चित रही; ऐसी सुन्दर, मनमोहक और साफ सुथरी (!) उज्जी धारण कर, अपने सर में उगी भूझोंस की भाँति सूखी तथा “अधवत्” एक में एक सटी-चिपकी रुद्ध केशराशि में घिरे “ढीन ( ) और चित्तर” महाभारत की शान्ति शमनार्थ, अपने खुर्चे जैसे नखों से खँचोखो, बिलकुल अपने “वाल्-फील्ड” यानी सर को ही नाच फेंकने की अन्त वेष्टा में लीन, फिर गली-गुल्मे में निकल जाती, जान पड़ता भूतबाने का सुताभित राखर का निराल पड़ा है। सुगुन-इसुर देवी से जब वह अपने सौं-कतों का विचर-विदेरकर अद्भुतभाव (!) छोड़ती, कटाख करती, जो सभ्य लोगों के दिल तो नहीं पर दिमाग मारे बचराहट के कत्तर खराब हो जाते। रमकलिया को देखकर लोगों के दिलों-दिमाग दोनों ही में घोर घृणा का विकसल बदमशर मथो न उठने लगे, पर इसके लिये उज्जी अरजवाली की विलविध के बीचों-बीच पर नाच खड़ा चकते !

उनके दिलो-दिमाग में रमकलिया की हसीन सूरत की जो फोटो नक्श थी, दुनियाँ वालों की अन्धी आँख उसे कहीं देख पाती थी।

श्री मुंशी जी—“काले गोरे से कुछ नहीं मंजूर,

दिल छाने के और ढब हैं।”

इस शायरी कलाम की वे जीती जागती वो चलती-फिरती नजीर थे। रोज ही खूब अपने को सजाते, थँसी और निस्तेज आँखों में धुमें की बारीक लकीर, पोपले और पिचके जबड़े में पानों की गिल्लौरियाँ तथा सन की तरह सुकैद बालों में, सुबह दोपहर शाम तीनों जून खिजाब की गोताई यानी पैंटिङ्ग कर जब वे छूला का स्वाङ्ग बनाकर, मूँछे मरोड़ते निकल जाते तो सर्कस वाले जोकर क्या खाकर हँसायेंगे, जितना मुंशी जी की यह शकल, यह फयन लोगों को लोटन-कबूतर बना देती। मगर सद्-अफसोस ! इतने साजो-सामान, ऐसी आड़ो-बुहार और मरम्मत पर भी रमकलिया मुतलक मुखातिब नहीं होती। यह तो इश्की दुनियाँ की खूबी है—

“हुए जुदाई में तेरे बेखुद कभी न पूछा कि हास क्या है।  
कहा जो मैंने कि हाय जालिम, मरा मैं फुकैत में तेरे इस दम।  
तो बोले मरता है हरएक आलम, तुम्हीं मरो तो कमाल क्या है ॥”

मगर इस दर्दे-इश्क के तपेअलम में जिगर को कबाब की तरह भून करके खाने में भी जो मजा, जैसी मधुरता प्रेमी-हृदय श्री मुंशी जी अनुभव करते थे उसे गमभूले के लिये दुनियाँ वालों को न अकल थी, न तर्क और न धाकर। रमकलिया की अरुच्य-मोन्दर्य-महिमा की गुमरावा केवल इतना ही कम देने से चौद-सूरज की तरह रौशन और चाली हो जाता है, कि उसके तीरे-नजरो के निशाने थे उस भवानगर के तीन आदिमी। एक तो स्वयं साक्षात् मुंशी जी और दूसरे मौजाना नकबल्लाहखली आलिय फाजिल, तीसरा यदुनुरा, पदनायक बलाकर। इन तीनों चुचकुरों, झुझुझियों एवं परम प्रेमीजनों की उस



सारे नगर में एकमात्र प्रेयसी “रमकलिया” ही थी, और उस सारे नगर में ऐसी कोई भाग्यवान सुन्दरी न थी जो इन काविल दिमागों को अपनी ओर रूजू कर सके। इन तीनों प्रबल प्रेमियों में बड़कुआ सबसे सौभाग्यवान था, क्योंकि “रमकलिया” की रहमो-करम उसपर काफी से भी ज्यादा थी, इसका कारण यह था, कि बड़कुआ उसके सुकोमोल पाद-पद्मों के धारणार्थ मैस की मजबूत चमड़ी की चट्टी बना देता, जिसे पहन कर वह जेठ की कड़ी धूप में गोबर और सूखी लकड़ी चुनने व-आराम जाया करती। और कभी-कभी बड़कुआ भी उसके इस बन-बिहार में योगदान दे, उसके लिये गोबर, लकड़ी चुन-चुनकर, उसका कृपाभाजन बना करता। बड़कुआ चमार, और यह दुःसाध, जोड़ी बनी बनाई थी। “खरबूजे को देखकर ही खरबूजा रङ्ग बदलता है” मगर इसमें “दाल भात में मूसरचन्द” की तरह जो मुंशी और मौलाना कूद पड़े थे, वे सदा गमेफुर्कत का रोना रोया करें तो क्या आश्चर्य? बौना छौंक कर चौद छूने की चेष्टा में असफल हो भहराकर मुँह के बल गिरके अपना थुथना तोड़ ले, तो यह मूर्खता उसकी है “चौद” की नहीं।

मुंशी और मौलाना दोनों ही बिचारे एक दर्द के शिकार थे। उन्हें बड़कुआ के सौभाग्य पर जलन, ईर्ष्या होती थी, पर जब रमकलिया ही उसपर सौ जान निसार थी तो बड़कुआ का क्या करार? मौलाना का जब-जब रमकलिया से अकेले में मुलाक़ात हुई, रस्मियों से हाँववाले दर्द दिल के हतारों धधधार उसे सुना भारे, पर वह ऐसी धुते बेपीर निकली कि उसने मौलाना की अश्रु-अश्रु-अश्रु की ओर मुलक खाल न फरमाया। वह सर-सर जाती जाती और मौलाना उसे अश्रु-अश्रु सुनाते-सुनाते तब तक रोवे मारते, जबतक कि कोई दूसरे तीसरे लोग नजर न आ जाते। इमर अल-मुंशी की अपनी खुशनुमा सूत पर, अपने साजो-सज्जार पर, हिमालय की नौति

अटल विश्वास था, कि “जहाँ क्षणभर भी उसने बगौर मेरी शकल देखी कि फिर तो पालतू पिछ्ही बन जाएगी।” जब ‘रमकलिया’ को देखते, उसकी राह रोक-रोक अपनी सूरत दिखाने की पुरजोर कोशिश करते, परन्तु वह पाषाण-हृदया प्रेयसी कतराकर निकल भागने के लिये पिछरे में पड़े पत्नी की तरह जोर मारती, और अन्ततः जब मुँठभेड़ होने की नौबत आती, तो “रमकलिया” या तो “बप्पारे” कहकर चीख उठती, या बीच राह में लोट-लोट कर रोने लग जाती। पुलिस के डर से तथा जगनिन्दा के भय से मुंशीजी भाग खड़े होते। बेचारे को अपनी मोहनी मूरत दिखलाने का मौका ही नहीं मिलता। इसी प्रकार मौलाना को शेर सुनाते और मुंशीजी या अपना रूप दिखलाने की चेष्टा करते-करते तीन साल यानी दस भाह की लम्बी अनाधि उमर हो गई, फिर भी मुराद पूरी न हुई और दिल की दिला ही में नीर की तरह चुभता रही।

आन्दिर बिगार ददेंदृष्ट को, जिसे दुनियाँ के बड़े-बड़े धीर-धीर और पहलवान भी नहीं बर्दाश्त कर गये—यह युगल वयोवृद्ध प्रेमोजन कनराध धन करते। एकदिन दोनों ही दोपहर में निकल पड़े। मुंशीजी ने उस दिन अपने को खूब सजाया और मौलाना ने शेरों की एक बहुत मोटी, लम्बी चौड़ी किताब ही ले ली। दोनों अपने-अपने पन्ने बौंध रहे थे। “वह चुन-चुन कर दर्दगरी आवाज में शेर सुनाऊँगा कि उसे अपनी इशक में पागल कर दूँगा।” यह तो जनाब मौलाना के मन्त्रवै थे, और मुंशीजी इस मोर्चेबन्दी में मशगूल थे—“यों कानक भर लोच से कदम रखेंगे, यों तुलने से माल-जाल कर शरीर आवाज में बातें करेंगे, यों आदों से आँने भटकजाँगे, बि चग लख उन्हें बेकाल-बेजान कर दूँगा।” वे युगल लक्षण प्रेमप्रतिभन अपनी-अपनी राह भरी जा रही थीं। एक दूसरे को दूसरे की स्वर, प्रोत्राण, निश्चय तनिक भी मालूम न था।

एक घनी रसाल बाटिका में एक टोकरी ताजा गोबर भरकर रखा हुआ था। बड़का एक आम के वृक्ष पर चढ़कर सूखी लकड़ियाँ तोड़-तोड़ कर गिरा रहा था और प्रमुदित मन “रमकलिया” उसे चुन रही थी। परस्पर प्रणय संभाषण भी हो रहा था। मौलाना जो पहुँचे तो एक लम्बी फर्सी सलामी दागी, और कुरआन पाठ की धुन में चीख पड़े—

“परी हो मुश्तरी हो, और महमे तमाशा हो।

“उठाकर आइना देखो, तो मालूम हो कि तुम क्या हो ?

तुम्हारे हूख को गुलरु गुलाब कहते हैं।

तुम्हारा चेहरा, उसे माहेताब कहते हैं ॥

बड़ी ही वेदना-व्यञ्जक मुँह बनाकर मौलाना ने फिर शेरखानी शुरू की।

आह—! तुम्हारे तीरे नजर दिल पर खाए बैठे हैं।

उठा दद कलेजा दबाए बैठे हैं ॥

फिर मौलाना ने मन्मथन खपना निगम थाम लिया, और सचमुच पुष्पा फाड़-फाड़ कर रोने लगे।

रमकलिया घबड़ाई। रमकलिया ने क्या हुआ, मैं जाने क्या बड़बड़ा गया फिर रोने लगा। बड़बड़ाया भी भयावह हुआ। उसने देखा—अरे यह तो मौलाना है, क्या इन्हीं चिन्तु ने तो नहीं काट खाया ? उसने रमकलिया को बलकाया, “—जान देलगी है जल्द गोबर का टोकरी फेंकें लड़ा का। और सिद्धोनी के पीने पर रगड़, जब तक मैं चिन्तु की पकड़ी खोजने जाता हूँ।”

रमकलिया भर-भर प्रचंडी मोदर हो खाल मौलाना की शेरखानी पर खिलने लगी। और मौलाना खालीगार के लोहने में—“आह ! आह दिल ठंडा हुआ” करने लगे। इतने में ही तब छप लुझी की आ पहुँची। मौलानाजी की आतिरबारी, सार्थ, आलिङ्गन उन्हीं को देखा तो अबल

पड़े—“क्या मैं इस इज्जत के काबिल नहीं हूँ, अरे मुझे क्या गोबर से नफरत है, लो-लो प्यारी जितनी इच्छा हो बशौक और खुशी से लगाओ।” मुन्शीजी गोबर का टोकरा लिये भाग चले, और लगे दनादन दोनों हाथों अपने सर से लेकर पॉवतक गोबर लपेटने। मौलाना ने जो देखा, अरे यह हल्वे का कंकड़ कहीं से फट पड़ा, दौड़ कर “रमकलिया” के निकट पहुँचे और बोले—“जाने जाँ ! यह तुम्हारी इश्क में बेकरार होकर गाय की लीद ही तो लपेट रहे हैं, मैं आदमी का लीद लपेट सकता हूँ, मगर अफसोस वह यहाँ काफी तायबाद में मौजूब नहीं हैं। फिर भी देखो दिल्बर, मैं तुम्हारी इश्क में क्या कर रहा हूँ।”

मौलाना ने ताबड़तोड़ अपने कपड़ों को फाड़ना शुरू किया और अमौमा से लेकर पाजामा तक की चियड़ी-चियड़ी उड़ा डाली। फिर उन्होंने जोर से अपने मुँह पर आप तमाचे बरसाने शुरू किये। मौलाना की ऐसी तेरती नफारत देखकर, भीत-सी घबराई हुई रमकलिया उनके निकट पहुँची और धीरे धीरे रो-रो कर कहने लगी—“ऐसा मत करो-देखा जा करे।” आखिर मौलाना की इस हमदर्दी से मौलाना का दिल और ठूला तो रहा। वे और तुमुने उत्साह से सूरत पर तमाचे लगाने लगे।

तुमुने ने कहा—“उस और गबी—“अरे यह तो कुछ चपल अपने कपड़ों को फाड़ने में बाजी मार ले जाना चाहता है। दौड़े वे भी, यहाँ रमकलिया कहीं तारी गिरगिराती हुई मौलाना की इस प्रभाव-प्रकाशक दृष्टि का निरोध कर रही थी। मुन्शीजी बोले—“अरे इतने ही में मूख नई, देखो प्यारी, क्या अपने इशक में आशिक की गरजत ?

अरे मुन्शीजी ने अपने खरे कियती फाड़े पोच डाले, और बस-पूर्वक रमकलिया का चर्चा (फाड़े की चर्चा) उसके फेंगे से निकाल कर तहातड़ अपने मुँह पर लगे गारने। फटफट ! फटफट की आवाज से खरी आध्रनाटिका मुखरित हो उठी और दोनों प्रेमी अपने को

मारते-मारते बेदम कर रमकलिया की चुनी लकड़ियों की ढेर पर भहरा पड़े। लकड़ी खिलर गई, और “रमकलिया” धवराकर बोली—“हाय-हाय लकड़ी तो सब बर्बाद हो गई?”

लकड़ी—! लकड़ी जैसी अदनी चीज के लिए तुम क्यों बेजार होती हो प्यारी, अभी मिट्टों में मनो लकड़ी गिरा डालता हूँ।” कहते हुए मुन्शी जी दनादन एक पेड़ पर चढ़ गये।

तो मैं ही तुम्हारी खिदमतपाक से क्यों महफूज और बरी रहूँ जानेमन! मैं तो बात की बात में बाग के सारे दरख्तों को तोड़ देने की ताकत रखता हूँ।” कहकर मौलाना भी उसी पेड़ पर चढ़ गये जिसपर मुन्शी जी चढ़ चुके थे।

पेड़ की फुनगी पर एक मामूली मोटी-सी डाल सूखी थी। युगल प्रेमियों की दृष्टि उसी पर पड़ी और दोनों ही उसे लेने ऊपर की धड़ा-धड़ चढ़ने लगे। मुन्शी जी ने ज्योंही उस सूखी डाल को सर्वप्रथम तोड़ कर अपनी बीरता का मुख्यात प्राप्त करने के सुप्रयत्न किया कि लपक कर मौलाना ने भी उसे थाम लिया, आखिर बेचारे वे क्यों फिसड्डी बनते। युगल प्रेमियों में खींचातानी होने लगी, और दोनों ही ने हाथों से लकड़ी के दोनों छोर पकड़कर एक बार बड़े जोर से झगनी-झगनी और खींचा। सहसा डाल से पैर फिसल गया और दोनों प्रेमी लकड़ी किंगे दिए, डाल के टूटे फल की तरह बेरोक-टोक जमीन पर धड़ से आ गिरे। नीचे वे प्रेमी युगल, ऊपर से सूखी लकड़ी की डाल, पूर्ण जमीन पर गिरते ही दोनों प्रेमी दौत बाकर पड़ गये। चलने में बड़कुआ जड़ी लिए आया। उसने जब दोनों के सीने पर अपना हाथ रखा, रहसा चिल्ला पड़ा—“अरे भाग रे सुसुरी की बेटी, यह तो दोनों मर गये!”

तब से उस बाग का नाम “भुतहा बगीचा” पड़ गया और आज तक जो कोई उस बाग से निकलता है, उस स्थान पर थोड़ा मोहर

और लकड़ी फेंक देता है, क्योंकि ऐसा नहीं करने से उसका अनिष्ट हो जाया करता है। अब तो वहाँ गोबर का अम्बार और लकड़ियों का पहाड़ हो गया है, जो इन “प्रणय-प्रतियोगियों” का अमर स्मारक है। अब इसकी शाखा प्रशाखाएँ तमाम हिन्दुस्तान में फैल गई हैं। हमारे पाठकों में बहुतेरे महानुभावों को देखने का यह अवश्य अवसर मिला होगा, कि अनेक ग्रामों में बाहर एक “ढेल मरवा” या “लकड़ी मरवा” स्थान बना रहता है, जहाँ पहुँचकर उस स्थान पर “ढेला” या “लकड़ी” फेंक दिया जाता है। वह स्व० मुन्शी और मौलाना का ही तो स्मारक है।



## दिल्ली

चिन्ताओं से चूर और परिस्थितियों से मजबूर आदमी को दिल्ली या तफरीह नहीं सूझती। तबले की ठनक, सारङ्गी की मनक, कोकिल कण्ठियों की सीटी तान, कोमल कामिनियों की अल-वान, दोल अद्दानों की छेड़-खानियों, बाँबी बलों की नाज-अरदासियाँ, कोई भी उन वादुकगत आदमों की खुरादिल की हय नहीं बना सकती। संगमर की इन अन्वतम मोहक और मसुर बल्लुओं में भी उनके कर्कशता तथा मज्जा की आन होगा। ऐसा बारडाख है वह पायी पेट, और इनको चिन्ता ! जो लोग बिना सिहान्त के, हाथ पोंच हिलाने बरौर, घर से बनी-बनाई कचौरियों और इस्के-पूरियों खाकर छेला देने घूमने

निकलते हैं, उनकी बात ही और है, पर जिस अभागे प्राणी को दिन भर कोल्हू के बैल की तरह पेराकर भी शाम को भर पेट अन्न नसीब न हो, जिसकी हार्दिक कामनाएँ और अभिलाषाएँ पल-पल में फाँसी के तख्ते पर झूलती हों, उसे दिल्लगी सूझे तो कैसे ? दिल्लगी दिल की उमङ्ग है, प्रसन्न-हृदय का प्रतिरूप है, खुश-खुर्रम लोगों की दिल-वस्तगी का एक मजेदार शगल है, या “वर्क” है। हम हृतभाग्यों से और प्रसन्नमूर्ति महाराणी दिल्लगी देवी से क्या वास्ता ! कैसा सरोकार !

आप सब सुनते जाएँ, मुझे दिल्लगी सूझे तो क्योंकर ! खुशनसीबी से कहिये या बदनसीबी से, मैं एक साधारण से नगर के म्युनिस्ट्रियल दफ्तर का मुलाजिम हूँ, और वह भी मामूली क्लर्क-किरानी ! एक मालिक का हुक्म दोनों, उन्हें खुश करना तो हिमालय की चढ़ाई है ही, फिर जहाँ बारह-बारह चौदह-चौदह मालिकान हों और उन मालिकानों में सौभाग्य (?) से यह “कम्पीटीशन” छिड़ा हो कि “फलों नौकर अगर माने तो मेरा ही हुक्म, फलों मालिक का नहीं” तो उस अभागे नौकर की नौकरी का खुदा हाफिज ! बिचारे के दिन परमावर-दारियाँ बजाते-बजाते और झिड़कियाँ सुनते ही सुनते कटते होंगे ! आज पहले हल्के के कमिश्नर साहेब हैं, कल दूसरे हल्के के, परमों तारंगी नौकरी-गोचरें वार्ड के। नौकर क्या क्या गजब का भण्ड ! मेकारा तुम्हारे पास एक दस दरवाजों पर “नामदे-नामदे” फलता रहे ! उधे दारुमी को दिल्लगी कैसे दीख पड़े सहेय ! जिसकी हर साँस से यह धाकड़ आवाज निकला करती है—“हे राम ! नौकरी रही कि गई ? बचाइयो भगवान !” नेट और इयनरी बिन्ता के अघर में लटका तथा प्रसिद्ध शांति के आकाश में परावर कपता तारा क्या ग्राहक-ग्राहक करे ? बाजी बाजी ! वह भयान गजाक में ही गहरा दिन बिता दे तो सब फव हुये !

सुबह उठा कि “जायत, स्वयं, सुगति, तुरीया” की चतुर्थ अवस्था

की भोंति चार अवस्थाएँ मेरे सम्मुख समाण खड़ी हुई । पेट, परिवार, नौकरी, और इनकी रक्षा की चिन्ता—? बस इसी पिक्र में दिन डूबा, रात आई, सोचते-सोचते सो गया, सुबह हुआ और फिर वही रांड़ का चर्खा—पेट, परिवार नौकरी और इनकी रक्षा की चिन्ता ! क्या खाकर दिल्लीगी करें हुआ !

गाँववाले तो गाँववाले—उन्हें तो मेरी गृहवशा और अवस्थाओं का ज्ञान न था, क्योंकि वे देखते बाबू ( यानी मैं ) जुल्फें सँभाले मलमल का कुर्ता पहने और फेल्ट टोपी लगाये, हाथों में बड़ी और काँखों में हाकिम का बस्ता दवाए कचहरी जा रहे हैं, दस आदाब बंदगी भी बजाते हैं, आने-दो आने रोज पान खाकर थूक देते हैं । बड़े कुवेर हैं । सिकन्दर और पुरन्दर के दूसरे संस्करण हैं । भगर हैं रूखे दिल के, किसी से भर मुँह नहीं बोलते, हँसी तफरीह भी नहीं करते, यही इनमें ऐश है—....वगैरह वगैरह ।’—यदि वे ऐसा कहें तो किसी तरह उचित भी था । परन्तु मेरी महारानी जी, जिनके हाथ-बाँह आमने की बुरी सजा में क्षण-क्षण भोग रहा हूँ, जो घर और बाहर से पूरी तरह वाकिफ हैं, और बनाई रोटियाँ खाट पर बैठी-बैठी तोड़ा करती हैं, उन्हें तो मेरे इस उपकार के प्रति कृतज्ञ, अनुग्रहीत और मेर सन्नीयसों का दमनर्द होना चाहिये था । पर उन्होंने भी मेरे पिता श्री० के गंगे, त्रिभुवा नाम—बा० गिरीन्द्र नारायण वर्मा—जिस नाम ने गंगे ‘त्रिभुवा पद’ की यादें जिलेट कड़ी की—को उड़ाकर मेरा नाम रखा था—“नीला कमल” शब्दा काटते “निल का जामवर” आदि आदि । पर तो बचाने की मुसीबत निकल निकले चोरी करो, बही करते भोर ! पर बाबू, क्यों आम दिल कड़ी की शान्ति सुख नहीं मिले, यह प्रार्थना क्या दिल्लीगी करे ?

+

+

+

+

मेरे घर बंदियों के एक कुल कंद कायको का शुभाग्रमय पुत्र



था। आप धक्का नहीं मेरे घर गौंधी जी या किङ्ग जार्ज फिल्ट नहीं उतरे थे, और ये लोग सबके लिये बड़े आदमी भी नहीं हो सकते, मगर मेरे घर पधारनेवाले महापुरुष हर आदमियों के लिये बड़े आदमी हो सकते हैं। जीवन की सारी कमाई चाहे वह 'अर्थ' की हो या 'काम-मोक्ष' की, जिनके सम्मुख तुच्छ, नगण्य हो, उनका पसर्गा भी पूरा नहीं कर सके, जिनकी योग्यता और बड़प्पन वर्णन के हेतु यह लोकोक्ति संसार प्रसिद्ध है—“सारी कमाई एक तरफ, और जोरू का भाई एक तरफ।” इतने मशहूर आदमी को खुश-आमद मेरे घर हुई थी। लिहाजा आप मेरे कथनों का खुलासा मतलब तथा उसकी सत्यता समझ गये होंगे कि मेरे गृह पर कितने बड़े आदमी के चरणारविन्द आये थे। यानी हमारे साले साहेब ने अपनी तशरीफ़ सुबारक लाने की इनायत बरख़ी थी। धनी आदमी थे, जवानी के दिन थे, चेहरे पर लागर्जी छाई हुई थी, बड़े मस्त और आनन्दी जीव थे, और इतने स्वातन्त्र्यप्रिय व्यक्ति थे कि इस्तहान में जब चार दिन धाकी रह जाते तो आपको “सर-दर्द” की बीमारी आ घेरती, और आप चट्-पट् मेसूरी या नैनीताल एलाज कराने चले जाते। शग्विर क्या करते बिचारे! इस्तहान के लिये जान थोड़े दूगान इस्त? “क्लास” में लेक्चरर हो रहा है, और आप बाहर “कालेज गार्डन” में “सिगार” और “सिग्रेट” के कटुषपन पर मीमांसा कर रहे हैं। “आई० ए०” में सात बार “सर-दर्द” हुआ, और आप सातों बार “फेल” रहे। अब आप पढ़ना छोड़कर बड़े आदमियों का सुख कर्त्तव्य, जीवन का सन्तानन्द—बड़ी दिल्लगी करते चलते हैं, और आप अपनी दिल्लगी को ही जल्ती में रूपते, प्रवाह के लिम्बे की तरह मेरे घर के नीचे गिरावे का लगे हैं। उनकी इस दिल्लगीप्रियता का सुपरिणाम (?) चुने मतलब पड़ता है। “जिल्लगी”, जोसा, दिक्कत (मोश्त) सिगार, कर्चीड़ी और मोश्तपेग की पैकरी में सब

गरीब के पूरे दो माह की कमाई याने १५ दूने ३०) रुपल्ली उनके चुसट के धुएँ की तरह उड़ जाती है।

आप भोजन करने बैठे थे। तश्तरी और कटोरियों पूरे साढ़े चार गज जमीन छँके भानमती के तमाशे के तुल्य बिखरी पड़ी थीं। इतनी चीजें तो वे एक बार खाएँगे नहीं, कुछ कुम्भकर्ण की औलाद थोड़े हैं! मगर मेरी महाराणी जी अपने घर की ठाठदारी और नफासत तथा बड़प्पन प्रदर्शन में मेरे खून की कमाई मिट्टी में मिला रही थीं। साले साहेब मेरी ओर सज्जते कर अपनी बहन से बोले—“जीजी! दुनियाँ देखी पर ऐसा “ड्राई” (सूखा) आदमी कहीं देखने को न मिला, पता नहीं इस शक्श के सीने में कौन से जानवर का दिल है! महा-हिंस पशु शेर भी आपस में हँसी-मजाक करते हैं, मगर यह तो शेरों के भी कान काटे हुए हैं। उस कहता हूँ बहना, मेरी यह साब कफन के साथ ही कबर में लिपटी जाएगी कि “साले-बहनोई” से “बहू-मसुर” का नाता न टूटा। क्यों भाई साहेब! कहिये क्या मैं गलत कह रहा हूँ?”

“हूँ—ठीक—है।”—अन्यमस्कतापूर्वक उत्तर देकर वे कनखियों से उन बर्बाद होनेवाली अपनी चीजों को देखता, खा रहा था।

“देखा बहन! सुना “हुक्कार” की ध्वनि! खुदा बचाए ऐसे नीरस जन्तु से”—बहन को इज्जित कर वे बोले। उनकी बहन देवी ऊनवर्त भुँभलाती और मन ही मन मेरी शुष्कता को कौसती हुई बोलती—

“छोटे बाबू, तुम तो कुछ बंटों के लिये गरम दो बरस पर आया करते हो, पर मैं तो आज प्रायः १५ वर्ष से लगातार देल रही हूँ। इनमें सदा “निक्ता मात” ही रहता है। चाहे होलो हो या आह! यहाँ “हूँ” की आवाज, और उसमें यही मारीपन, वही उपेक्षा और ऐसी ही गमभीर सुखदुःखा! छोटों इन्हें। सायाँ तुम। यूँसे फाट हैं फाट!

समझा बड़े आदमी हैं, बड़े आदमियों का दिलो-दिमाग कुछ और होता है। बहन की ललकार पर कहीं पीढ़ा उठाकर न चला दें, इसलिये सतर्क हो बैठ गया, पर यह वैसे बड़े आदमी अभी नहीं बने थे जैसी इनकी बहन जी बन चुकी थी। हँसते हुए खाने लगे, मगर फिर बोले—“जीजा जी ! तुम्हें मेरी सौगन्ध जो इस बार कुछ दिखानी न करो, देखूँ कौन झिपाता है ?”

“हाँ-हाँ मर्द की तारीफ इसी में है—” मुझे चौंका देती हुई मेरी गृहलक्ष्मी बोली—“बाप के बेटे हा तो दिखानी करके दिखा दें, तुम अपने को बड़ा हुशियार समझते हो। बोलो हैं मंजूर ?”

मैं थाल पर से उठ गया, साते साहेब भी उठे, और उठते-उठते बोले—“क्या खाकर यह दिखानी करेंगे बहन !”

इन बहुत भले और बहुत बड़े आदमी ने बात ठीक ही कही—कुछ खाकर ही दिखानी की जाती है। बिना खाए दिखानी क्या होगी ? किन्तु फिर भी ये “युगल आता-भक्ति” मुझसे दिखानी की माँग पेश कर रहे थे। इनकी समझ की बलिहारी थी !

साते साहेब तो बाहर बैठके मैं सोने गये, मगर मैं बाहर न जा सका। क्योंकि घमैल मेरी श्रीमती—“वे दूधनी पतिव्रता, पतिगद्द परायणा रमणीय हैं जिन्होंने के बाहर मुझे एक पल भी बाहर रहने या सोने नहीं देती।” ईश्वर जाने उनकी यह प्रयत्नशून्य पतिव्रति का उद्रेक थी, या मेरे आचरण भ्रष्ट होने की शक्ती—मग और निन्दा की कुदोश्या ! जो, हो, मैं घर में ही सो रहा।

श्रावती गायतरी बोली—“तुम्हें कलम है मेरे सिर की, जो इस बार छोटो लड़के कुछ दिखानी न करो, वंचितों ने कितने दुखभरे आर्त नेत्रों से मेरी और देखते हुए कहा था—“मेरी साध कफन में लिपटी कब मैं जाएगी। राम ! राम !! वह सुनकर भी तो तुम्हें कुछ दया आई होती।”

मैंने कहा—“दया तो करूँ मगर मेरा तुम एक काम करो।”

श्रीमती, सोत्साह बोली—“जरूर करूँगी, कहो।”

मैं—“मुझे कल अपने एक नये दारोगा मित्र को बेवकूफ बनाना है, तुम दस बजे रात में साहवी पोशाक पहन कर आओ। मैं उसे कहे रखूँगा कि पुलिस का साहेब रात में गश्त को आया करता है। वह तुम्हें देखते ही डर जाएगा, उसे कान पकड़वा कर उठाना-बैठाना तब छोड़ना, फिर बड़ी दिल्लीगी होगी।

तुम्हें भी दिल्लीगी करने की आदत पड़ रही है, इसलिये मेरी महाराणी परम पुलकित हो बोली—“हाँ, हाँ, बड़ी खुशी की बात है जो तुममें कुछ जानदारी आ रही है, मगर वह मुझे छू-छ्वा तो नहीं करेगा ?”

मैंने कहा—“माशेअल्ला ! तुमने भी खूब सोची, अरे उस कम-बख्ती के मारे की तो मारे खोफ के बुरा हाल हो जाएगा। रोएगा, गिड़गिड़ाएगा कि तुमसे यानी अपने अफसर से हाथापाई करेगा ?”

श्रीमती के दिल में मेरी यह बात बैठ गई। वे हर्ष गद्गद् हो बोली—“हाँ, हाँ ठीक, ठीक ! ठीक ! बड़ा उल्लू बनेगा वह दारोगा। अच्छा कब ! कल रात में न ?”

“हाँ !” मैंने कहा !

वे बोली—“मैं तैयार हूँ तुम साहवी पोशाक लेते आना।”  
दूसरे दिन—

जब मैं ५ बजे शाम को आफिस से लौटा तो छोटे बानू बैठक में बैठी थी। मैं कपड़े उतारना हुआ बोला—“आज तो दिल्लीगी ठीक कर आया है लाला, मगर उहाँ दिल्लीगी बल, नहीं तो भारी मद्द होगी।”

वही उपद्रव से छोटे बानू बोले—“मैंमा दिल्लीगी बरा बताइये गो, उसने गाले कोई और मारे, क्या तो दिल्लीगी में ही दिन गुजरे हैं।”

मैं—“अच्छा तो सँभले रहिएगा, आज ही दस बजे रात को तय रही।”

छोटे बाबू—“तनिक हिन्ट” (संकेत) तो दीजिए। दिल्लगी किस रूप में होगी।”

मैं—“जब हिन्ट ही मिल जायया तो फिर मजा क्या आयेगा।”

छोटे बाबू—“कुछ भी तो बताइये—”

मैं—“एक औरत आपको छुकाने आएगी।”

छोटे बाबू—“तब !”

मैं—तब आप एक काम कीजिएगा। मैं नकली “गलसुच्छा” लेता आया हूँ। आप दारोगा का ‘ड्रेस’ पहनकर मुझसे बातें करते रहिएगा। जिस दम वह आये, आप से कुछ अनाप-शनाप बोले तो आप चट उसकी कलाई थाम लीजिएगा, बस बीबी को लेने के देने पड़ जायेंगे। देखिए छोड़िएगा मत। चाहे वह लाख कहे, “मैं आपकी पत्नी-चिलानी हूँ।” धसीद कर ले जाइयेगा अपने कमरे में और माज से सारी रात दिखगी करते रहिएगा। मैं तो इसका भेद नहीं खोलता, पर आपका पद-गौरव बड़ा ऊँचा है, और आप दुनिया के एक बड़े प्रिय पदार्थ और बड़े आदमी हैं, इसलिए आपकी कदर, प्रतिष्ठा करना मेरा फर्ज है। हाँ, एक बात, इसका जिक्र अपनी बहन से कभी न कीजिएगा, नहीं तो वह बड़ा भारी उपद्रव खड़ा कर देंगी। समझे न ?”

छोटे बाबू—“अच्छी बात है। मगर वह औरत कौन है, कोई शरीफ तो नहीं ?”

मैं—“नहीं साहेब, शरीफ औरत एक गैर मर्द से, सो भी रात में दिखगी करने आएगी, वह मेरे दफ्तर के एक बाबू की स्त्री है।”

“हाँ—? तब खड़ा रहेगा !”—अनन्द विहल हो भाँले भाँके बोले।

श्रीमती को पूरा साहेब बना दिया, गोरे मुखमण्डल पर पाउडर

पड़ते ही वह और लाल भभूका हो गया। ओठ पर एक पतली-सी भूँछ की काली लकीर खींचते ही विल्कुल शकल ही बदल गयी। अब वे इङ्गलैण्ड से टटके आए एक “यङ्क” (युवक) साहेब थीं। हाफ-पैसट, शर्ट, कोट, चश्मा, हैट, टाई, स्टिक, सब दुस्त था। इधर इनके भाई साहेब भी मुँहपर “गलमुच्छा” चढ़ाए खाकी बिरजिस, खाकी, कोट और बटनदार टेढ़ी टोपी धारण किये खासे दारोगा बने बैठे थे। हम दोनों में धुल-धुलकर बातें हो रही थीं कि सहसा साहेब बहादुर बड़ी रोबीली आँकड़ से ‘बूट’ पटकते कमरे में बुसे। मैं संसभ्रम उठा और झुक-झुककर सलाम बन्दगी की, फिर बा-अदब एक ओर माथा झुकाए गंभीर मुद्रा में खड़ा हो गया ?

साहेब दारोगा से बोले—“बेल दारोगा ! इस टाइम में तुम यहाँ क्या करता है ? हम तुमसे “कॉन्स” लेना ।”

दारोगा बोले—“आप पूछने वाले कान होते हैं, हम “राउन्ड” में निकले हैं। आपको मैंने रात में वगैर लाइट गर्त करते गिरफ्तार किया ।”

साहेब कड़ककर बोले—“बेल दारोगा ! गुस्ताखी से मत बोली, हम पुलिस अफसर हैं, कान पकड़कर उठने बैठने से हम तुमको म्बाफ कर देंगे, बर्ना आज से तुम अपने को “डिसमिस” समझो ! बोली उठते बैठते हो, या मैं कल कार्रवाई ?”

“हाँ—! ऐसी बात ?” कहकर हँसते हुए साहेब उठे, और उन्होंने साहेब बहादुर का हाथ थाम लिया। अब मैं बलात् हँसी रोकने में विल्कुल अतमर्षणा होकर बाहर चला आया। दारोगाजी ने और साहेब बहादुर ने साथी मुठभेड़ शुरू हो गई। साहेब बहादुर धनका-धनका कर मुँह देख रहे थे, मैं कहीं चला गया। वहाँ तो नेमाज की पढ़ना चाहता है। दारोगा जी बैठे थे नवोल्लान की तरह संजाम क्षेत्र में। बैठे बिठाए एक शीश रजमर दिहनी करने के लिए सुपत

में मिल गई, इस आनन्द का परित्याग करने पर वे तत्पर न थे। हाथा-पाई शुरू ही थी कि सहसा दारोगाजी के हाथों से झटके खाकर साहब का हैट दूर जा गिरा, और झट् नागिन-सी चोटी लटक कर पीठ पर लोटने लगी। अब उन्हें मेरे कथनों पर तनिक भी सन्देह न रहा। दारोगा जी ने एक ही धक्के में मेरी श्रीमती यानी अपनी बहन को पलंग पर चारों खाने चित्ता दे मारा, फिर कहा—“अरे बीबी अब उछल कूद मत करो, हमलोग खेले-खाए आदमी हैं, हमें फसाना टेढ़ी खीर है, जाने न पावोगी, चुपचाप पड़ी रहो।” फिर वे अपना मुँह श्रीमती के कपोलों के निकट चुम्बनार्थ ले गये कि उन्होंने उनको दाढ़ी नोच ली—सारी दाढ़ी अनायास ही उनकी मुड़ी में चली आई, और वह एकाएक जोर से चीख उठी—अरे कौन ! छोटे बाबू तुम—छोड़ो ! छोड़ो ! अरे मैं हूँ तुम्हारी बहन ! थोफ़-हो ! यह क्या हुआ !”

साले साहब रसिकतापूर्वक बोले—“अरे चकमे न दो, बहन पहन गई भाड़ में, मजाक छोड़ो।”

श्रीमती व्यग्र हो बोली—“ऐं—! तो क्या मुझे न छोड़ोगे ? क्या भाँग छानो है—! बहन पहचान में नहीं आती !”

साले साहब उसी स्वर में बोले—“खूब आती है पहचान में, मैं उल्लूनाथ नहीं हूँ जो तुम्हारे मुगालते में आ जाऊँगा। समझी ? आज रात यहीं बितानी पड़ेगी। बहन बनो या बुआ, मैं छोड़ने का नहीं।”

छोटे बाबू फिर सुमन के लिये लपके कि श्रीमती चिल्ला-चिल्लाकर नीचे लगी और लागे लागे हाँगों मुझे भी करा-भला कहने लगीं। मैंने भी देखा अब अनर्थ हुआ चलना है, रीढ़का पीतर गया और दोनों को दो तरफ हटाकर बोला—“साहब सलाम ! दारोगाजी सलाम !—“मेरी हँसी देखकर साले साहब कुछ झिझके, श्रीमती चटपट लोटे के जल से मुँह हाथ साफ कर छोटे बाबू से बोलीं—“तो पहचानो, मैं तुम्हारी

कौन हूँ। बेवकूफ ! फँस गये फन्दे में न ! अकेली मैं ही नहीं—तुम भी। गुपचुप आदमी बड़ा कौंइयाँ और पक्का दगाबाज होता है।

बेचारे छोटे बाबू ने जेठ के कुत्ते की तरह बिचोभर अपनी जीभ बाहर निकाल दी। चेहरा इतना सुख हो गया मानो सैकड़ों जूते सूरत पर पड़े हों। मैंने कहा—“क्यों छोटे बाबू, और छोटे बाबू की बहन जी, अब तो साध पूरी हुई न—? अरे मैं तो भली तरह साध पूरी करा देता, मगर रोने से दया आ गई।”

तब से श्रीमती को “दिल्लीगी” शब्द मात्र से इतनी चिढ़ हो गई है कि उसका नाम लेते ही बड़बड़ाने लगती हैं। जमाने ने बेतरह पलट्टा खाया। मैं दिल्लीगीबाज हो गया, और वह—वही “सूखा काठ” “नीरस जन्तु” बन गई हैं।

छोटे बाबू को भी कई बार लिखा—“शेष साध भी पूरी कर जाइए नहीं तो वह कफन में ही लिपटी कब्र में चली जाएगी।” पर न तो वे आते ही हैं, और न कुछ उत्तर ही देते हैं। शायद उन्होंने भी “दिल्लीगी” से किनाराकशी कर ली है।

ह

“आशिकी”

“आशिकी का ही बुरा, इसने बिगाड़े सारे काम।

हम तो १० बी० में रहे अगियार बी० १० हो गये।”

(स्व० अकबर पलाहाबादी।)



रोगों का राजा “कारबङ्गल” और “डैविटीज”, दुखों का मूल बुढ़ापे की विधुरता, आफतों की मार, भरी जवानी में “लकवे” का आक्रमण, इन सबका सादर स्वागत सहर्ष स्वीकार है। पर जनाब इस कहरे-वाला आशिकी यानी इश्क निगोड़ी से या अल्लाहगनी तेरी ही पनाह। इसका जैसा तीता तजर्वा, सङ्गीन नतीजा आपके इस सेवक को उठाना-भोगना पड़ा है, आपके भगवान अपने हजार हाथों से इस खतरे से आपकी रक्षा करें। उफ—ठीक ही कहा है—

“खालिसे खार से खुदा की पनाह।

निगाहे यार से खुदा की पनाह।”

उन गजब की आँखों की सङ्गीन चितवन को खुदाई मार से कम कष्टकारक न समझिये। खुदा जिसे हर हाल जलीलोखार बनाना चाहते हैं, वही इस मुई आशिकी के बगएडर में उड़ा फिरता है। कहने वाला ठीक ही कह गया—“खुदा जिसे खराब करें, वह लगाए दिल।”

× × × ×

सुनिये मैं अर्ज करता हूँ।

हमारी जैसी तबीयत वाले—यानी जिस गरीब का दिल पुए की तरह मुलायम, कच्चे धागे की नाई नाजुक, शोशे की भोंति तुनुक और दुधमुँहे बच्चे के मानिन्द नादान हो—आदमी के घोर दुर्भाग्य से हम जिस कालेज में पढ़ रहे थे, उसमें देवियों भी शिक्षा पा रही थीं, और साथ-साथ कहना बेजा नहीं, जिनकी मुदया और चरणाविन्दों के ललन्द अकवाब से रक्ती नली “रामायण” और “महाभारत” की रचना हुई, यदि इनके जमा कटान से कालेज और होस्टलों में भी एक छोटी-सी “रामायण” व “महाभारत” का मञ्जन हो जाए तो तत्पश्चात् की कोई गुज़ारिश नहीं। ये हमारे कालेज माध्यम में भी प्रमुख महाकाव्यों को खूबना प्राप्तिव हो गई थीं। दर्जेना—“हिन्दु-कुराहद” “दुष्कृत और शक्तु” “पिता और महीवाल” पैदा हो

गये थे, और अपने टूटहे सीने में अपनी-अपनी “लैली शीरी—“शकुन्तला, मत्स्योदरी”—“हीर-सोहनी” का दर्द सँभाले “आहों फुँगा” से फलक में फोड़े डाल रहे थे। गो, हम इन सब क्रमेलों से सदा दूर ही दूर रहने की चेष्टा किया करते थे, पर जिस नगरी में साक्षात् महामाया अपने प्रचण्ड रूप से नरसंहार लीला में जुट पड़ी हो, उस नगर का वासी तो एक न एक दिन महामारी महादेवी के चपेटे में आकर ही रहेगा। मैं भी आकर ही रहा—और बुरी तरह।

मैं था एक ठेठ दिहात का वाशिन्दा, ब्रिलकुल सर से पाँव तक सीधा-सादा। न मुझसे किसी छामछूम या बनाव शृङ्गार का नाता था और न “कालेजी बाबू लोग” जैसी किसी तड़क-भड़क से सरोकार। पढ़ना और खाना, फिर सो रहना यही मेरा जीवन था और मैं अपने इसी सादे से जीवन के लिये कालेज भर में “चे-गैन-वाल”, (जोगद) के नाम से मशहूर था। हाँ, कभी-कभी मैं होस्टल कम्पाउण्ड वाले “गार्डन” में योही घूम-फिर लिया करता था। मगर मुझ बदनसीब के लिये यह घूमना भी आजाब ही साबित हुआ।

×            ×            ×            ×

उस दिन ग्रीष्म की सुहावनी सन्ध्या थी, और मैं उसी होस्टल वाले ‘गार्डन’ के गोलम्बर पर अकेला बैठा-बैठा ठंडी बयार की बहार लुट रहा था। इसी समय हमारे कालेज की दो सुन्दर छात्राएँ अँक-इती, मचलती, ऐँटती और इतराती उसी ‘गार्डन’ में आ घमकीं। अजीब उनके मेस थे। वे खूब सजी सजाई थीं। उनके गोरे मुखड़े पर पाउचर पुता था। गुलाबी रङ्गों ने डोढ़ रङ्गे थे। कलाइयों में शिकं-लौ-लौ लोने की चूड़ियाँ थीं। कानों की “इयररिङ्स” सचमुच हवा की डोल रही थीं। लॉय लो नदी न थी पर ललाट पर रोनों-बिन्दु बड़े बादक दिन से चमक रहे थे। केश खुले थे, जिसका दो फतली लटें उनके गुलाबी माहों की चूमती, उनके ऊपरे उरोजों पर नागन-

सी लोट रही थीं। ऊपर के केश बगल से सँवारकर और “पत्ते निकाल कर “गोल्डेन सेफ्टीपिनों” से अँटका रखे गये थे। चौड़े पाद की एक निहायत कीमती शान्तिपुरी साड़ी, उनकी बलखाती हुई कुश-काया में आधुनिक ढङ्ग से लिपटी थी। क्या बताऊँ उनके लोच, नाजो अन्दाज, वे यह समझे बैठी थीं मानों सौन्दर्य और सुकु-मार्य मूर्तिमन्त हो उनके पोर-पोर में डोल रहा है। वे अपनी मस्तानी अर्दाँ से बेखबर-सी आपस में धूम-धूम कर बातें करती उस नन्हें से फूलबाग को तुल्य कर रही थीं। वे ऐसी बेफिक थीं, आजाद थीं और खुश थीं, जैसे संसार की सारी यंत्रणाओं पर उन्होंने फतह पा ली हो या कभी उसकी पर्वाह न की हो। सहसा मर्दाँ के दुपट्टे की तरह उनके पृष्ठ-प्रदेश पर झूमता हुआ—उनमें से एक का अञ्चल गार्डन की कौंटेदार भाड़ी में बुरी तरह उलझ गया, और वे एक निहायत शोख अर्दाँ से चमक कर उलट गईं। शायद उन्हें जान पड़ा हो, इस अपार रूप के तरल सुरा से अचेत किसी उन्मादी ने तो नहीं उनका अञ्चल थाम लिया ? पर खैरियत यह हुई कि उनके रूप का वह दीवाना कोई हाथ पोंच वाला न था बल्कि वह था मूढ़ प्रकृति का एक बेजबान बच्चा और उन्हीं की तरह “स्त्रीलिङ्ग” कार्टे की भाड़ी।

वे हँस पड़ीं। फिर अञ्चल छुड़ाने के प्रयत्न में लगीं। पर वह गरीबिन छोड़ती न थी। अजीब झगला था। सहसा इस दृश्य ने मुझे “सीता स्वयम्बर” की याद दिला दी, वे भी जब रङ्गभूमि में पवारी थीं तो “मोहे रूप देखि नर नारी” का ही दृश्य उपस्थित हो गया था। पर यहाँ तो इस रूप की महिमा यह है कि डाल और पत्ते तक मोहे भरते हैं। धन्य रे रूप !

मैं बदनसीब यह सब शोभाएँ निरख रहा था, और बेहखत्यार होता जा रहा था, जैसे दिल में डोंक गाड़ी अपने “कुल मोशन” में दौड़ लगा रही हो। आखिर मैं भी तो कोई वैदिल का जानवर

न था। कविकुल आचार्य बाबा तुलसीदास के शब्दों में—जब नारी के नयन-वाण से विद्ध प्राणी, महाघोर निशा में सोते से जग पड़ते हैं तो, मैं तो बिलकुल जगा-जगाया था, फिर इस “नयन—वाण” से विकल क्यों न होता ! फिर “नारि नयन सर काहि न लगा” इन्हीं महात्मा के शब्दों में मैं भी उसी “काहि” श्रेणी के ही जीवों में तो था।

ये रूप की सँवारी, शोभा की गद्दी मनोहर मूर्तियों मेरे गोलम्बर की ही तरफ मुड़ी। एक ने दूसरे की तनिक उझली दवाई और यह एक दिल भोकने वाली नाजो अदा से मधुर-पीड़ा-स्रोतक सुँह बना “आह—री—” कह कर रह गई। जलती कढ़ाही में जैसे नैल पड़ा, मैं छून् छूनाकर रह गया और बड़ी व्यग्रता से अपने कां रेंगालने लगा। या मेरे मौला कहीं मुझसे कोई “एक्सीडेंट” न हो जाए।” इधर मेरे दिलो-दिमाग—दोनों का बुरा हाल था, और उधर उन्हें यह शरारत सूझी कि वे मेरे गोलम्बर के निकट आ एकाएक “हालट” हो गईं। होठों पर चही जालिम मुस्कराहट, चितवनों में बही सितम-अंग्रेज बारदात ! इस प्रकार अपने सम्मुख इस साक्षात् भूकम्प को उपस्थित होते देख मैं तो बिलकुल करार खो बैठा। घबराया सा, भीत सा, व्याकुल सा माथा माड़े, आँखें बन्द किये मैं इस प्रत्यक्ष भूकम्प का विकराल प्रभाव मन ही मन सहसूस कर रहा था, कि ये मूर्तियाँ अब मेरे गोलम्बर पर ही थप से बैठ गईं। या भगवान मैं तो झूले की तरह डोल गया। एक ने बड़ी मीठी बोल और बाँकी अदा से तनक मुस्कराते हुए कहा—“आग मुझे क्षमा करेंगे, मैं आपको कुछ कष्ट दिया चाहती हूँ।”

साहस बढोर कर भी मेरे मुख से जोड़ी बारह स निक्कली, कोहने खाने व्यक्ति की तरह जीभ अँठने लगी, और नाक से ज्वालामुखी की तरह आग की लपटें निकलने लगीं। मुझे बिलकुल निःशब्द देख उसने अपनी दूसरी संविनी से कहा—“अजी, ये राह्य तो मुझसे

बोलना तक शायद गुनाह समझते हैं। तनिक तुम्हीं पूछो न, शायद तुम शंकर की समाधि तोड़ सको।

दूसरी कुछ व्यङ्गपूर्ण दङ्ग से मुस्कराई और बड़ी नजाकत से रुक-रुककर बोली—“क्यों जनाव, हमने क्या कुसूर किया है जो जनाव तक नहीं पा सकतीं ?

“न-न ना-ना, आप पूछिये, जो पूछना चाहें, मैं कुछ दूसरी बात सोच रहा था। क्षमा करिये। हाँ कहिये।”

एक सौ से षड़-षड़ मैं इतना बोल गया। पर मेरी परीशानियों को वे ताड़ गई थीं जरूर।

वे हँसी—“मालूम होता है, शायद आपने, “फिलासफी” ली है ?”

मैं जरा भेंपता-सा बोला—“जी नहीं तो”—

पहली—“तो फिर कवि होंगे !”

दूसरी बोल पड़ी—“हाँ, हाँ, कवि ही होंगे, क्योंकि यह एकान्त और एकाम्रता कवि को ही प्रिय है।”

मैंने कहा—“नहीं-नहीं मैं कवि भी नहीं।”

पहली—तो फिर किसी की याद में खोये होंगे।

दूसरी बड़ी शांखी से हँसती हुई बोली—“हः, हः, हा, ठीक ! ठीक !! वह “याद” मुई है ही ऐसी चीज जो संसार और अपने तक तो क्या, खुदा तक को भुलाये रखती है।

अब मैं और बेतरह धबड़ाया, आखिर मुझे यों बार-बार छेड़ने, उसकाने में इनकी मन्सा क्या है ? कि इतने में वह फिर बोली—“क्यों साहब, क्या मेरा क्यास गलत है ?”

मैंने सरल भाव से कहा—“क्या ?”

फिर वे दोनों तन तन और बोली—“अजी वाह, आप तो जैसे क्षण-क्षण पर एगानि लेते हैं।” इतनी बातें हो गईं, फिर भी आप पूछते हैं कि “क्या ?”

मैं—“आप क्षमा करें, मैंने समझा नहीं।”

“ओहः होः, आप तो बिलकुल भोले निकले।” मजाक के लहजे में उन दोनों ने कहा।

एक बोली—भोले नहीं बनते हैं बिचारे, कहीं भण्डाफोड़ न हो जाए।”

“हा, हा, हा, हा, हः हः हः हः”—तालियाँ पीटकर वे ठहाके लगाकर हँस पड़ीं और मैं उनकी इस उद्दण्डता, धृष्टता पर हक्का-बक्का-सा हो रहा। फिर वे बड़ी आँकड़ से बलखाती निकल गईं।

\* \* \* \*

उस दिन सारी रात मुझे करवट बदलने की कवायद करते ही बीती। “जो जल उठता है वह पहलू, तो वह पहलू बदलता हूँ” वाला मजमून रहा। उनकी तस्वीरें मेरी आँखों के सामने जादू की तरह घूमती रहीं, और मैं आहें खींचता रहा। मेरे मस्तिष्क को इन गुत्थियों ने भारी उलझन में डाल रखा था—“उन्होंने मुझसे क्यों छेड़-छेड़कर बातें कीं, मुझसे वे चाहती क्या थीं? क्या मुझपर उनका आकर्षण तो—” फिर ख्याल आता “अरे भला क्या मैं ही इस एक से एक रूपवाले भरे कालेज में ऐसा गुलाम गुलाम हूँ।” फिर सोचता—“स्नेह या आकर्षण तो किसी रज शौला पर निर्भर नहीं करता। वह तो अपने दिल की चाह है, देखा गया है बड़ी-बड़ी परीगाद टॉपर्स के पहलू में चिपकी फिरती हैं। फिर मैं भी तो कोई ऐसा बरसड़ा नहीं।” आगे रूप का ख्याल आते ही भटपट मैंने दो लंबे गन्नि में भूतभूत से आरुणा भकाला, लैम्प की बत्ती तेज की, और बड़े मनोयोगपूर्वक अपने रक्त को निहारने लगा। जैसे मेरी गारो-शक्क तो कुछ खुश न थी, पर आज मुझे अपने पर बड़ी बेतरह भुँकजाहट हुई, क्योंकि मैंने अपने रक्त को कभी कोई महत्त्व न दिया था, इसकी हिफाजत और उसकी के लिये कोई इस्तेजाब, कोई कोशिश

कभी न की। दाढ़ी के बाल आधे-आधे इञ्च बढ़े हुए थे, बाल सूखे झल्लों की तरह खुरक और उलझे हुए थे, मानो इस बेचारे ने मुद्दत से तेल और कढ़ी का मुख न देखा हो। राम ! राम !! मैं भी कैसा मूरख हूँ, मुझे इस रूप में देखकर उन्होंने मन में क्या कहा होगा ?—“कालेज स्टूडेंट है तो क्या, पर हैं पक्का मूरख या आलसी कोढ़ी ?” बस अब कल ही बाल बनवाऊँगा, दाढ़ी साफ करूँगा, कपड़े बदलूँगा फिर देखूँ कौन मेरे मुकाबले में खड़ा होता है ?

सुबह सबसे पहले मैंने अपने इसी रात्रि कुत संकल्प को पूरा किया। फिर कालेज गया। आज मैं बड़ा खुश था, जैसे भीतर किसी नवशक्ति का प्रादुर्भाव हुआ हो। सदा रोनी-सी गम्भीर मुखमुद्रा पर सुहास्य की मंजुल रेखा आलोकित कर सहपाठियों से मिला। मित्रवर्ग बड़े अचम्भे में थे—“यह मेंढक को जुकाम कैसा !”

“कालेज आवर” तो मुझे एक सत्य और सुबोध स्नेही की भोंति आकाश से भी अधिक अनन्त असीम दीखने लगा। जब-जब घबड़ा-घबड़ाकर घड़ी को देखता, वह सूम की मरीज घोड़ी की भोंति टिख-टिख चल रही थी, कमबख्त सरपट का तो नाग ही नहीं जानती ! क्या बताऊँ, किस बेकरारी से, मैं “चार-बजने” की बात जाह रदा था। अभागा यद्य भी इतनी हैरानी से अपनी निर्धारित अधि की समाधि का इन्तजार नहीं करता रहा होगा ? खैर विरही तरह ४ वंश। प्राण मिले। भागा। और चट कपड़े बदल कर उसी गोलम्बर पर पलकें बिछाये बैठ गया। आज मैं उनके प्रश्नों का अनेक मनोहर तथा प्रणय-परिपाटी के अनुकूल उत्तर, अपनी नोटबुक में नोट कर ले गया था। उद्ये किंत् प्रेमासुत भाव से, कोमलता पूर्वक दौंते बिदोर-बिदोर कर, निहायत नमी और मुहब्बत से सराबोर जुवान से पेश करूँगा; उनकी बातें किस नम्रतापूर्ण शिष्टता से तनिक झुककर तथा अपने अङ्ग-प्रत्यङ्गों को विविध मोहक ढङ्गों से सिकोदते, फैलाते, कभी

सेन्ट से तर अपनी रुमाल से मुख, कभी चश्मे का शीशा पोंछते, और मुखड़े पर पूरी मधुरता लाते सुनूँगा, इन सबका मैं आपही उस एकान्त में “रिहर्सल” कर रहा था। और इसमें मुझे इतनी तल्लीनता हो आई कि न तो मुझे समय की सुब रही, न स्थान, और न अपनी स्थिति का ज्ञान ! छायावादियों की कट्टर प्रणयिनी-सा मैं अपनी विचार-धारा में लीन हो गया। अब आप-ही-आप बड़बड़ाने लगा, आपही सवाल करता, और आपही अपने मोशनों के साथ जवाब देता। गलत मुझे सुन पड़ा कोई मेरा नाम ले लेकर पुकार रहा है। समाधि हूँ तो क्या देखना हूँ कि सामने प्रो० अग्रवाल खड़े-खड़े सुस्कारते हुए मुझे पुकार रहे हैं। उस समय सूर्यास्त हो चला था।—“अरे—!” वित्तेभर जीभ बाहर निकाल कर मैं मारे शर्म और ग्लानि से गड़ गया। वह क्या, शाम भी हो गई, और उन कुसुमबदना की जगह टूँडी मूँछों से मरी प्रो० अग्रवाल की वह कृष्ण-कृष्ण काया !

“क्यों श्यामलाल अन्दरे तो हो ?” अग्रवाल साहेब ने तनक पुरस्कृतकर पूछा।

“जी—!” सकपकाता हुआ मैंने संचित उत्तर दिया और ‘अटेन्शन’ की मूड में खड़ा हो गया।

“क्या किसी “नाटक” में पार्ट लिया है तुमने ?” अग्रवाल साहेब ने फिर पूछा।

“जी नहीं।” लज्जा से जमीन कुरेदते हुए मैंने कहा।

“तो फिर आई, रंग निराले में यह उछल-कूद, यह बड़बड़ाना और हँसना, सुनाना, किस बात का वातक है ?” दिमाग भी दुस्त, कर्णों एकट्ठा जानता भी नहीं, फिर वह कैसा बवाल !” वे इस बार कुछ खुलकर हँस पड़े।

“—एँ—एँ—” करके मैं घर खुलवाना बनने लगे लभा।



“देखो ऐसा कभी न किया करो वर्ना पागल हो जाओगे। समझे न ?”

वे इतना कहकर चले गये, और मैं भी अपनी कल्पती कामनाओं को सबो करार देता अपने “रूम” में चला आया।

×                      ×                      ×                      ×

उन्हें देखने के लिए मेरी बेकली “भारत में अंग्रेजी राज्य” की भाँति बढ़ती गई। सिर्फ एक दिन की बात व मुलाकात से मैं इतना तड़पा करूँगा, भूख और नींद भी हराम हो जायगी, इसे तो मैंने स्वप्न में भी नहीं सोचा होगा। चौथे दिन फिर वे मुझे उसी बाग में टहलती मिलीं। मैं चुपचाप गम्भीर होकर गोलम्बर पर बैठा पछता रहा था। कारण कि उस दिन मैंने न तो अपनी वह ‘मनोहर उत्तरावली’ नोटबुक ही लायी थी, न रिहर्सल क्रमही जारी रखा था। फिर इनसे कैसी बातें होंगी? पर बैठे-बैठे घंटों बीत गए मगर वे न आईं। लाचार मैं ही उठा और उनसे कुछ दूर उनके पीछे-पीछे डोलने लगा। पर अभाग्य, फिर भी वे मेरी ओर मुखातिब न हुईं। दिल में हिम्मत बाँधता—“मैं ही कुछ उनसे क्यों न पूछूँ” मगर फिर भी साहस घेन मौके पर दगा दे जाता। मैं इसी घचर-पचर में पड़ा विचार कर ही रहा था कि वे बाग के बाहर हो गईं। चिड़िया उड़ गई, पिछरा खाली रह गया। अपनी असह्य शून्यता से दिल को चीरने लगा। बंगाल की खाड़ी से भी एक गहरी “आह” खींचकर मैं रो पड़ा। पर वहाँ मेरे आँसू पोछनेवाला या देखनेवाला बैठा ही कौन था? आप रोया और आपही चुप हो गया।

जुधा मोजन रो भिट जाती है और प्यास जल से, किन्तु यह गर्व एसी गला है, अतनी बार अपनी पिणतताओं के दर्शन होंगे, उतनी ही अधिक और जोरदार दर्शा का ज्ञान- - जुधा बिकल करेगी, मिलन संभाषण की बलिष्ठ और अमर अशिलापा मिलविलाती रहेगी।

वही दशा मेरी भी हुई। अब यह दर्द जब मुझसे सँभाला न गया तो एक अपने अजीज अहवाल की जरूरत हुई जो बेचारा मेरे दर्दों का या तो कुछ इलाज बता सके, या साक्षीदार हो। बड़ी छान-बीन के बाद अपने एक सहपाठी मुसलमान दोस्त को हूँद निकाला और मेरी समझ से मुसलमान भाई लोग इस फन के आम उस्ताद माने जाते हैं, इरकी मर्ज के रङ्ग-दङ्ग और उसके निदान के विषय में यह काफी ज्ञान रखते हैं। लेहाजा मेरा यह मित्र-निर्वाचन बुरा न था। सारा किस्सा अपने इन नये अहवाल को सुनाकर मैं रो पड़ा। वे साधिकार बोले—“तुम बेवकूफी कर गये पहले ही रोज, वे तुमपर फरेस्त होकर ही तुम्हारे पास आयी थीं, मगर जब वे तुम्हारी जुनूनी गुस्तगू के बाद समझ गईं—अरे यह तो वेदाल का बूदम है” तब उन्होंने तुम्हारी तरफ नजर भिड़ाना भी बुरा समझा, और इसीलिये बाद की मलाकात में उन्होंने तुमसे अपनी आँखें फेर लीं।

“पर—पर—मगर—मगर वे मुझे चाहती हैं, ऐसा विश्वास आपको भी होता है क्या?” बड़ी अधीरता से मैंने पूछा।

वे कुछ झुंझलाते से बोले—तुम भी यार आदमी हो या सौदाई? काश वे तुम्हें नहीं चाहती तो तुम्हें उन्हें छेड़ने की जरूरत ही क्या थी? तुम तो चुप अपनी जगह बैठे थे।

हाँ भाई ठीक है। पर यह मूर्खता तो मुझसे हो गई, अब इसकी मरम्मत कैसे हो, कोई यत्न है?

उन्होंने कहा—है क्यों नहीं, तुम्हें कोई ‘शेर-वेर’ मालूम है या नहीं?

मैं—‘शेर’ तो क्या, मैं तो अलिकने भी नहीं जानता।

वे—मैं एक शेर लिखे देता हूँ, तब देखना वे आरहा हैं, नजर बचाकर और आहन्दा जैसी उनकी शरकें होंगी, तात्कालिक कार्रवाई

होगी। लिखो तुम, मैं तो हिन्दी जानता नहीं। शायद वे उदू न पढ़ सकें।

मैं—मगर भाई भई अश्लील चीज न लिखाना, शायद वे मेरी ओर उतना आकर्षित न हुई हों, और इससे वे अपना “इन्सल्ट” मान लें।

“अमाँ लिखो भी, तुम यह सब क्या जानो।” फटकारते से वे बोले। अच्छा लिखाओ भाई।

—“लिखो—“न बोसा देने आता है न दिल बहलाने आता है। तुम्हें तो ऐं बुतेकाफिर फकत तरखाने आता है।”

शेर तो मैंने लिख लिये, पर इसके दो शब्द “बोसा” और “बुतेकाफिर” मेरी समझ में बिल्कुल न आया। और मैंने अपनी शका-समाधान के लिये इनके मानी पूछे।

वे बोले—“बुतेकाफिर” यानी “खूबसूरत शकलवाला” और “बोसा” मानी इज्जत के लायक।

—“हाँ, तब तो अच्छी चीज आपने लिखाई।” तोष भरे शब्दों में मैंने कहा।

वे हँसते हुए चले गए, और मैं अपने बदलकर बाल सँवार कर बाश की ओर गया। आज तकदीर गाय दे रही थी। ज्यों बाग में खुसा कि वे भी पहुँची। मैं धीरे से बड़ी लावधानी पूर्वक ‘शेर’ वाला पुर्जा उनके आगे गिराकर आगे बढ़ गया। मगर मेरी दृष्टि उन्हीं की ओर अटकती थी। यह देखने के लिये कि वे पुर्जा उठाती हैं या नहीं?” परन्तु वे पुर्जा तो नहीं उठाई आगे बढ़ गईं। अब मुझे भारी चिन्ता लगी। यह पुर्जा उनके हाथ लगे तो कैसे? अब मुझसे बैठा भी नहीं जाता था। उठा और फिर उनके पीछे-पीछे पड़ने लगा। जब वे ऊपर से चकर लेती हुई उसी पुर्जेवाली जगह पर पहुँची और फिर या उन्हींने पुर्जा नहीं उठाया, तो मेरी अधीरता अब असीम हो गई,

और जैसे बलपूर्वक किसी ने मेरे मुख से कहला दिया—“शायद वह चिट्ठी आपही की गिरी है ?”

वे मुड़ीं। परस्पर एक भेदभरी नजरों से देखती हुई हँसी और फिर पुर्जा उन्होंने उठा लिया। एक पढ़ रही थी, और दूसरी भी उन्चक कर उसे देख रही थी, दोनों मन्द-मन्द मुस्करा भी रही थीं। एक ने मुझसे पूछा—इसे तो आपने ही मेरे लिए गिराया था शायद ?

“ऊँ-हूँ-ऊँ-हूँऊँऊँ-ऊँ-ऊँऊँ !” वे मेरे इस घबराहट भरे विन्नित्र उत्तर पर खुलकर हँस पड़ीं।

बात दर-असल यह हुई कि मैं तो पहले से ही उनकी खुरत देखकर ही घबरा-सा गया था, और उन्होंने इस पर इधर उधर से मुझसे प्रश्न, मानो उन्हें मेरी सारी बातें मालूम हों। मैं था भी अभी इस महाल का नया सिपाही। इस हड़बड़ में अनायास मेरे मुख से सच्ची बात निकल पड़ी, हलाँकि भटपट मैंने—“ऊँ-हूँ-ऊँ-हूँ” की तकारात्मक ध्वनि से अपनी अस्वीकृति प्रकट की। परन्तु जैसा उनके मुखड़े का मान मैंने परिलक्षित किया उसमें तब प्रकट था कि वे मेरी पहली—“हूँ”—“हूँ” का स्वाकृतिप्रकट ध्वनि पर ही विश्रस्त थीं। वे उस पुर्जे को लिए चली गईं। फिर कोई बात न हुई।

×                      ×                      ×                      ×

और जिनों ने आज कुछ खुश तो मैं जरूर था, परन्तु “देखें वे क्या करती हैं ?” इधर निक ने दरीमान भी कम न था। कपड़े रुम में चौकी पर गिराये कदी मोच रहा था कि भरे एक बगलगीत गिद्यार्थी गुनगुन उठे—“लिया लन का मोचा—”

कहना मैं उनसे पूछ बैठा—“क्यों माहव इस “गोया” का मानी क्या है ?

वे बड़ी रसिकतापूर्वक आँखें मटका कर बोले—“सुम्बन !

सुम्बन ! अधर रसपान ! इसकी पिपासा बड़ी तरल और हृदय-प्राही होती है ।

“अरे बाप रे, यह क्या गजब हो गया ।” एकाएक मैं बोल उठा । अब उस अश्लील शेर के सारे अर्थ मेरी समझ में आ गये । सारी रात दुश्चिन्ताओं के मारे नींद न आयी । अभी प्रातःकाल उठा ही था कि प्रिंसपल महोदय के अर्दली का “लालसाफा” देखकर धक् से रह गया । उसने कहा—“आपको प्रिंसपल साहब बुला रहे हैं ।”

जो शङ्का थी वह साकार होकर सामने आई । कालेज की दो सद्वंश प्रसूत शिक्षित तथा शिष्ट छात्राओं के अपमान करने के अभियोग में मुझे “रेस्टीकेट” होना पड़ा । मेरे उस पुर्जे को मेरे मुँह पर तमाचे की तरह फेंकते और रक्तवर्ण आँखों से मुझे घूरते हुए प्रिंसपल बोले—“तुम्हारी यह करतूत ? सीधी वल्लिया कपड़े चबा गई । जाओ, अपना काला मुँह करो ।”

प्रिंसपल महोदय की मेज के निकट वे दोनों आफत की परकाला “कालिज की शिक्षिता” भी खड़ी थीं और बड़ी गम्भीरतापूर्वक सचमुच शिष्ट बने माथा गाड़े । पर इस स्त्री-सुधार-युग, और स्त्री-प्रोत्साहन काल के महाअन्धड में मेरी कौन सुने ?

और मैंने भी अपनी “आशिकी” का अन्तः समाप्त पाया । नीरव बंधन बाँधकर जब मैं अपने गृहगमन के हेतु रथ पर भावर हुआ तो ठाट कविवर अकबर का यह “शेर” मेरे मुख से निकल पड़ा—

“आशिकी का हों बुरा, इसने बिगाड़े सारे काम ।  
हम तो १० बी० में रहे, अगियार बी० १० हो गये ॥”

## बाप-बेटे

सेठ सठौराचन्द हमारे नगर के धन्नासेठों में थे। आपकी अतुल धनराशि के विषय में लोगों में यह आम शहरत थी कि “कारूँ का खजाना आपके ही घर फूट निकला है।”

कहते हैं लक्ष्मी आती है, तब सब आता है, मान भी, यश भी, कीर्ति भी, अपवाद भी, विद्या भी, बुद्धि भी, शरारत भी और सज्जनता भी। मुस्तसिर में यह कि दुनियाँ की ऐसी कोई भली या बुरी चीज बाकी नहीं रह जाती जो लक्ष्मीनाथों के घर स्वयं दौड़ती, भागती, छुड़कती, गिरती न आ घसती हों। लेहाजा सेठ सठौराचन्द के घर भी लक्ष्मीवान के सारे सामान मौजूद थे।

अकले सेठ जी अनेक खिताबों और उपाधियों से सम्बद्ध आत्म की डाल की तरह लदे थे। वे सरकार की राय में बहादुर यानी “राय-बहादुर” थे, वे अखिल भारतवर्षीय सनातनधर्मा समा की दृष्टि में शान्तात् “धर्मगृत्ति” थे। हिन्दू समा ने उन्हें “हिन्दू हितकारी” का सेताव वन्द्य रखा था। क्रिश्चियन समा में वे भारी “दानवीर” थे। अल्लाहों ने उन्हें “दयावागद” भना रखा था, और पण्डित समा ने उन्हें “विद्याधूपक” की उपाधि से विभूषित किया था। वह सब था, पर सेठ जी सिर्फ “सेठ” जी थे, जिसे उन्हीं की सुविधा भाषा में “सठ” कहा जाता है।

सेठ जी में सबसे खूबी और “क्रेडिट” की बात यह थी कि वे पक्के संसारी थे, दुनियाँ के रङ्गोरफ्तार समझ कर ही कदम बढ़ाते थे। विपुल वैभव के आगमन का एकमात्र कारण केवल उनका ही व्यवसाय-बुद्धि विमण्डित महामुण्ड था, तथा संसार भर के चातुर्य का अगम आगार उनकी नकारारूपिणी प्रचल तौंद ही थी, जो उनकी परम गृहदस्थूल काया से गजों ऊपर उठकर दूर से ही दर्शकों को अपने पृथक् अस्तित्व का पता देती थी। इसमें सुई की नोक के बराबर भी सन्देह की गुञ्जाइश नहीं कि सेठ जी अपने जमाने के विकट व्यापारी, व्यवसाय के धीरे कुशल कलाकार तथा एक सफल सेठ थे, नहीं तो उनके बाप दादा तो पापड़ बेला करते थे। जब कभी अपनी इन्हीं सफलताओं के धीरे धमरुड की आँधी, उनकी उदर-कन्दरा में बिलबिला उठती थी—तो बड़े जोश में अपने महामुण्ड एवं कुण्डोदर को हाथों से ठोंक-ठोंककर जैसे वे अपनी विजय का डङ्का पीठ रहे हों—बड़बड़ा उठते—“यह इसी सुचतुर खोपड़ी और “बुद्धि राशि सब गुण सबन” रूपी महान तौंद का बड़ा अकबाल, प्रचण्ड प्रताप है जो सेठ सठौराचन्द आज “पापड़ बेचवा” के बेटे से घनासेठ पुकारे जाते हैं। सचमुच उनके जीवन की इस अपूर्व सफलता से कौन इनकार करता ? सेठ जी ठीकरे से मर्कतमणि हो गये।

\* \* \* \*

सुबह की बेला था, सेठ जी के दो सेवक—हलखोरवा और मनसरवा, उनकी शानदार कोठी के सायबान में, सहन पर डाढ़ बिछाए बैठे थे और भीतर सेठ जी मसनद और गांव तकियों के सहारे लेटे “बगई का बालार रर” देख रहे थे।

हलखोरवा और मनसरवा—दोनों सेठ जी के उरने सेवक थे, और वे दोनों समकक्ष ही। हलखोरवा की उमर ५० साल की थी, और मनसरवा की ४५ की और प्रायः सेठ जी की भी अच्छी नहीं

५०।५५, वर्ष की ही होगी। नौकर मालिक सबों में, यही ४।५ वर्ष की बड़ाई-छोटाई का अन्तर था।

सचिन्त भाव से तमाखू की चिलम में दम लगाता हलखोरवा भनसरवा से आहिस्ते से बोला—“बाप-बेटे दुनोजन एकै मेहरिया पर मरत हैं, भगवानै भला करें।

साश्चर्य व्याकुल मुद्रा से अपने हाथ में चिलम लेता हुआ भनसरवा ने पूछा—“कौन बाप-बेटा एकै मेहरिया पर मरत हैं हो?”

इधर-उधर निरीक्षण के बाद हलखोरवा और धीरे से बोला—“यही हमारे मालिक बाप-बेटे, अउर कउन!”

“अय्य—” मारे आश्चर्य के अपने मुँह की एरिया बिच्चे भर फैलाता भनसरवा बोला—भला ई बात मालकिन जानत हैं!

हल०—अरे समूचा नगर जान गवा है, उन्हहीं के ई बात न मालूम होई।

चिन्तित आकृति से भनसरवा बोला—तब तो ठीकै कहत बाट कि भगवानै खैर करें।

हल०—हाँ, तब क्या, हम भूटै कहत हई। तू देखत नाही जे छोटे सरकार (सेठ जी के सुपुत्र) जगवर बड़े सरकार से खींचे रहत हैं। बाप-बेटे में कभी भर मुँह बात भी नहीं होती है।

भ०—हाँ, हाँ, अरे हम तो यह जानत रहली कि जे बाप-बेटे आपस में लिहाज करत हैं, हमें का मालूम जे, ई दोनों बाप-बेटे एकै मेहरिया के ‘इस्की’ में तबे रहत हैं। एसा समय सेठ जी के नगर से मरती बर्षा।

“हानिर हई सरकार!” कहते दोनों हाथ बाँचे कमरे में घँस पड़े। सेठ जी बोले—“देखो हलखोर! तुन हमारे पुराने सेवक हो, एक तरह से तुम दोनों ने हमारे यहाँ अपनी इर्झा ही गला दी, और हमारा



दारी के साथ, इसमें शुबहा नहीं। आज हम, तुम दोनों इमानदार नौकरों को कुछ इनाम देना चाह रहे हैं।”

दोनों हर्ष गद्गद् हो हाथ उठाकर एक ही साथ बोल उठे—  
“जय होय सरकार की, धर्माश्रितार की, दिन-दिन तरकी होय, राज बढे, वंश बढे, धन बढे।

ये लो, तुम दोनों!—पाँच-पाँच रुपया का नोट सेठ जी ने दोनों के सामने फेंक दिया, जिसे उठाकर दोनों ने अनेक बार झुक-झुककर सेठ जी की बन्दगी बजाई।

सेठ जी—तनक बाहर देखो तो कोई है ?

दोनों दौड़े और क्षणों में वापिस आकर बोले—“नाहीं सरकार, एक चिड़िये का पूत भी नहीं है।

सेठ जी—अच्छा यहाँ आओ, नजदीक में, यह बगडल ले लो, इसमें साड़ी है, समझे, बड़ी दामी साड़ियाँ हैं, सावधान रहना कहीं खोये नहीं। चले जाव चावड़ी बाजार देखा है न ?

दोनों तत्परतापूर्वक चिल्लाकर बोले—“जहाँ पतुरिया रहत हैं, वही चावड़ी बाजार न ?”

सेठ जी—चुप, बेवकूफ ! आहिस्ता बोल। हाँ, हाँ, वही, वही, वहाँ बीबी जहूरन नाम की एक नरिया मस्ती है, पूत लेना निन्ती मे, उसी को यह बगडल दे देना, आज कहना सेठ साहब आज शाम को आयेंगे। समझे न ! खबरदार यह बात किसी को जरा भी मालूम न हो।

दोनों—नाहीं सरकार ! आप बेफिकर रहें, हम गदहा थोड़े चरावत हैं।

सेठ जी—अच्छा जाओ, जल्द करो।

× × × ×

बीबी जहूरन, देहली के चावड़ी बाजार की मशहूर तबायत है।

छोटी उमर, छोटी कद, नथनों में साढ़े सात इञ्च व्यास का 'नथ' चक्र। बड़ी मीठी और लोचदार अदा ! रंग-रंग और रेशे-रेशे में नाज, लुभाने के विविध ढङ्गों की प्रकाण्ड परिणता। बाप-बेटे दोनों ही उनके प्रेमीजन थे, और वह थी दोनों की ही प्राण-प्रिया प्रेमिका। बाप-पूत दोनों को ही मूँड खाना जहूरन के खास जौहर थे। और ये दोनों ही मूर्खराज बाप-बेटे उसके बेढब फँसे शिकार थे। जिस समय हलखोरवा और भनसरवा साड़ियों का बंडल लिये पहुँचे उस समय बीबी जहूरन स्नानादि से निपट कर कपड़े बदल रही थी।

हलखोरवा और भनसरवा ज्यों बीबी जहूरन के कमरे में उपस्थित हुए कि उनकी पीठ पर ही सेठ जी के सुपुत्र बबुआ करोड़ीचन्द जी भी आ पहुँचे। अपने पिता के सेवकों के आगमन का कारण उन्हें समझते देर न लगी। वे गुस्से से आग हो गये। उन्हें देख, दोनों के ही प्राण तड़फड़ा उठे। वे उनके क्रोध और उद्वेग स्वभाव से परिचित थे। दोनों ही माथा गाड़े भय-कम्पित नेत्रों से एक दूसरे को घेर रहे थे। मानो उनकी आँखें कह रही थीं—“अब क्या होगा ? यहाँ तो बेढब फँसे।”

करोड़ीचन्द सक्रोध काँपते हुए बोला—“तुम यहाँ कहाँ रे ?”

दोनों चुप, जमीन देखते रहे।

फिर करोड़ीचन्द ने पूछा—“अबे बता सूअर, यहाँ क्या करने आये थे ? किछ बदमाश ने तुम लोगों को यहाँ मेजा। यह सर पर क्या है ?”

करोड़ीचन्द ने झपट कर बरखल खींच लिया, जिसमें बड़ी बेशकीमती लूः माड़ियाँ, लूः जम्पर, और चार चौड़े रेशमी मोजे थे। इन सामानों ने करोड़ीचन्द को और भगका दिया ! वे गुस्से से धिलकुल अर्थात् हो गये, और दोनों के कान पकड़ कर झुककारते हुए बोले—“पर यह सामान उसी अहमक तुम्हारे मालिक ने दिया, जो ५० और ५-५५ वर्षों का अमनी जिन्दगी की खर्चा भिया खतम कर चुकने

के नाद भी अपने मूजीपन से बाज नहीं आता। और तुम साले लोग उस शैतान के हथकण्डे बने हो ? बुढ़ापे में भी वेश्याओं की चीजें ढोया करते हो ? खैर आज बड़े मौके से मिले, तुम साले लोगों पर चोरी का जुर्म लगाकर अभी पुलिस को सुपुर्द करता हूँ।

पुलिस का नाम और चोरी का जुर्म सुनते ही दोनों के हाश हवा हो गये। दोनों गिड़गिड़ाते-बिलबिलाते करोड़ी के कदमों पर कटे वृद्ध की तरह गिर पड़े, और उसके पाँव पकड़ बोले—“दोहाई है छोटे सरकार की, हम तो दास हैं, जैसा हुकुम मिलता है, उसे पालने पर तो हम मजबूर हैं। हमारा का दोस सरकार ! हमें माफ करो दादा। बाप रे जेहलबा माँ हम एकौ घड़ी नाहीं बचव सरकार। दोहाई-दोहाई।” दोनों करोड़ी के पैरों में चिउटे से चिपक गये।

करोड़ी—“अब तो यहाँ कभी कुछ लेकर नहीं आओगे न ?

दोनों—ना सरकार !

क०—कसम खाओ, गङ्गा की ओर बौंह उठाओ।

दोनों ने बौंह उठाकर कसम खाई।

क०—अच्छा यह सब बात पिताजी से तो नहीं कहोगे ?

दोनों—नहीं सरकार !

क०—वे पूछेंगे साड़ी दे आए तो क्या कहोगे ?

दोनों—दे आये कहूँगा सरकार !

क०—अबे किसे दे आए कहोगे !

दोनों—आप जिसे कहो लकार हम कद देंगे।

क०—कहना साड़ी बीबी गारुब को दे आये। अच्छा !

दोनों—अच्छा सरकार !

करोड़ी तनिक दुस्-सा बोला—“सब बातों में गाले अच्छा-अच्छा किये जाते हो, मगर जरा भी असली बातों का पता बताया, और मुझे मान्य हुआ नहीं कि फौरन पुलिस में तुम दोनों को दे दूँगा, देख

अच्छी तरह याद रखना, यह न समझना चङ्गुल से निकल गये। जानते हो न घर पर किसकी हुकूमत चलती है? माँ की, और माँ मुझे कितना प्यार करती हैं। जान रखना, मेरे खिलाफ जाने से तुम्हारा कभी खैर नहीं।

दोनों—ना सर्कार, हम आँख के अन्धा, शरीर से कोढ़ी होंय जो आपके खिलाफ कुछ कहें।

करोड़ी—हाँ, वही समझा दिया। तुम पिताजी से कहना, साड़ी हम जहूरन बीबी को दे आये, उसने शाम को आपको बुलाया है। समझे।

दोनों—जी हाँ।

करोड़ी—यही कहोगे न।

दोनों—जी हाँ।

करोड़ी—सच-सच इमान से, धर्म से कहते हो न।

दोनों—हाँ, सर्कार धरम इमान से कहिल है।

करोड़ी—अच्छा जाव।

सर पर पाँव रख दोनों भागे, जैसे कैदखाने से रिहा हुए हों।

X                      X                      X                      X

शाम का वक्त है। चिराग बत्ती जले अभी आध घण्टे से ज्यादा नहीं हुआ था। सेठ जी कपड़े बदल कर फिटिन पर सवार हो टहलने को निकल गये हैं। उनकी कोठी के उम्मी सायबान में, उनके युगल चारखाल इलन्दोरवा और मनसरवा बैठे विलम पी रहे हैं। इलन्दोरवा मुँह से बुझी उगलता हुआ गैला—“देखा हम जो कहते रहे—“बाप-पेटें पति बेहतरिया पर मरते हैं” वो बात आदे कि नहीं। देख आज का-का गुल खिला है। गान-गूत दोनों उम्मी मुँगायी पुर्तारवा के वहाँ गयेन हैं। आज बाप-पेटें में खुनै गुत्थम-गुत्थम होई।

मनसरवा—रान कही, आज बड़े मलेसागुस का मुँद देख के उठे।

रहे, नहीं तो आज कैद में कलपत रहित। बाप रे बाप आदमी क  
ऐसन गुस्सा कौने काम क।

ह०—अरे चरबाल है ससुर का पूत, हमार कान तो अबतक  
भक्ष्मकालि है, जौने जोर से वह आईठा रहा।

भ०—तब आज ई दोनों “बाप-पूत” खूबै लात जूता करिहैं ?

ह०—हाँ, एहमें का सन्देह बाय।

इसी समय ऊपर कोठे से सेठानी जी ने पुकारा—“भनसरवा !”

हलखोर हड़बड़ाकर बोला—“सुन ! सुन !! मालकिन पुकारत हैं।”  
हाँफता कौपता भनसरवा ऊपर गया।

सेठानी कड़ी आँखों से देखती बोली—“क्यों जी, तुम दोनों क्या  
बातें कर रहे थे ?”

“कुछ नहीं सरकार !”

सेठानी समोध बोली—“चुप, झूठे, बदमाश ! तुम्हारी सारी बातें  
राभी हमारी कानों नुनकर आई हैं। सच बताओ सेठ जी और करोड़ी  
इस समय कहाँ हैं ?

भनसरवा बोले तो क्या बोले ! चुप खड़ा रहा।

सेठानी फिर बोली—“नहीं बताओगे ! अच्छे ! अभी तुम दोनों  
को पुलिस में देती हूँ।” भनसरवा पीड़ित सेठानी के चरणों पर गिर  
पड़ा और बोला—“सरकार हलखोर दादा सब बात जानत हैं, उनहीं  
से पूछ लेंओ।”

हलखोर की भी गकड़ाहट हुई, और सेठानी के काफी डोंट-फटकार  
तथा मग दिखाने पर दोनों ने ही मारी बातें उमल दी।

सेठानी—अच्छा तुम दोनों ने तो उसका चेहरा देखा है ?

दोनों—हाँ, सरकार।

सेठानी—तुम दोनों हमारे साथ चलो। तुलओ झाँवर की और  
कहो ‘कार’ ले आए।

दोनों कलपते हुए हाथ बाँधे बोले—“दोहाई है सरकार की ! हमके जिन ले जाव, हाथी-हाथी की लड़ाई में हम चिउँटी की जान चल जाई। बड़े-छोटे दोनों सरकार समझिहैं कि हमी ने आपसे सब बातें बताय दीं, अउर लिवाय आये हैं, नाहक हम मरि जाव सरकार, कैद दिलाय देहैं।

सेठानी—किसी की मजाल नहीं जो मेरे रहते तुम्हें कैद करवा दे, विश्वास करो। मैं तुमको पूरा इनाम दूँगी।

दोनों—अरे सरकार इनाम के लोभ मों तो मारे गये।

सेठानी—मैं जो कहती हूँ करो, तुम्हारा कोई कुछ बिगाड़ न सकेगा।

×                      ×                      ×                      ×

उधर सेठ जी बीबी जहूरन से अभी धुल-धुलकर बातें ही कर रहे थे कि करोड़ीचन्द के आगमन की उन्हें सूचना मिली। बेचारे मारे भय के भाव में पड़े चने-सा भडभडा उठे। यह अभिमान ऐन मौके पर ही गुगुगुगु गुगुगुगु आ टपकता है।” वे जहूरन से बोले—“उसे कहला दो, वह नापस जाये।”

वित्त पर जीम गहिर निकालकर जहूरन बोली—“हुजूर यह क्या फायदा है, नगरी शासक का जाएगी, इतनी मार पड़ेगी कि छः मास तक उठना मुहाल रहेगा। आप तो जानते ही हैं जैसे बिड़ी और गुस्सेवर वह हैं।

सेठ जी—तब मैं ! मैं किस रास्ते बाहर निकलूँ।

जहूरन—रास्ता सिर्फ एक बड़ी है, जहाँ हुजूर के साहबजादे साहेब खड़े इन्तजार में हैं। हाँ, आप छतपर चले जाइये।

सेठ—“अगर वह छत पर ही चला आया तो !”

जहूरन—हाँ, तब तो मुश्किल होगी।”

—तबफ मुँहभला कर बोले—“सिर्फ मुश्किल ही न अभी,

जैसा इस बाप-विद्रोही बेटे ने मेरे कुल में जन्म लिया है। झटपट उलझ ही तो जाएगा और नतीजा यह होगा कि मैं तुरी तरह पिट जाऊँगा। मुझे क्या मालूम था, नहीं तो मैं अपने आदमी लिये आता। कशेड़ीचन्द ऊपर चढ़ता हुआ बोला—“बस अब ज्यादा इन्तेजार नहीं कर सकता, चाहे कोई रईस हो या रईस के बाप, उन्हें फौरन बाहर करो।

गुस्से में डूबी हुई करोड़ी की कड़कती आवाज ने सेठजी को ही नहीं बल्कि बाईजी को भी व्याकुल कर दिया। वे धवराई हुई सी बोलीं—“अल्लाह के वास्ते रहम कीजिए नहीं तो भारी आफत नाजिल हो जायेगी। यह मेरी कपड़ा टाँगनेवाली आलमारी है, इसमें खाने नहीं हैं। आप तकलीफ कर के फौरन इसीमें खड़े हो जाइये। मैं बाहर से किवाड़ खँटका दूँगी। और किसी बहाने उन्हें दाल दूँगी, फिर रातभर आप आराम से निताइयेगा। लीजिए जल्दी कीजिए नहीं तो अब वे आना ही चाहते हैं।”

बेचारे सेठजी भी मजबूर थे। क्या करते! जहूरन ने झटपट उनका हाथ थामकर दीवार में लगी अपने उस आलमारी में उन्हें खड़ा कर दिया, और किवाड़ मिड़का दिये।

अब सत्तर दरवाजे का किवाड़ा खुला, भगभनाते हुए करोड़ी ने प्रवेश किया, और गरजकर पूछा—“क्यों किवाड़ खुलता क्यों न था? कौन आया है? वही मेरा मूजी बाप! जहूरन बड़े प्यार से उसके कन्धे पर हाथ रखती हुई बोली, जैसे वह अपनी मीठी बातों का शर्वत पिलाकर उसके क्रोध की तुर्सी मिटाना चाह रही थी—“भला आप भी क्या-क्या रङ्ग बाँधे आते हैं, यहाँ किस मरदूद का बाप दादा मुँसौसा अपना मुँह पिटाने आएगा? यहाँ किसी के बाप-दादे का रखा ही क्या है?

उसके हाथों को सबल हटाता हुआ सक्रोध करोड़ी बोला—

“रहने दो अपने ये चकमें। जिस सूजी को छिपा रखा है उसीके सामने अपने ये चोंचले और चकमे दिखलाना, यहाँ तो सब जाने-समझे बैठे हैं।”

जहूरन ने भी अब समझा कि यह तुर्सी, प्यार की शर्बत से न मिटेगी, बल्कि उसे बुझाने के लिये इससे कड़ी तुर्सी की जरूरत है। अतएव वह भी अब जरा तुनक कर बोली—“क्या जानें बैठे हैं साहेब... इरामजादे को छिपा रखा है? आप... नशाखोरी सी हो जाया करती है।... वो, वह उतना ही दुत्कार बताता है। जहूरन उन तबायफों में नहीं हैं, जो एक के बदले चार की बुलाती है। यहाँ तो सिर्फ एक ही की चाह है। न विश्वास हो, न आदर मेरे पास।

जहूरन की इतनी साफ-साफ और रूखी बातों से करोड़ी कुछ दबा, कुछ शान्त हुआ, फिर उसने कहा—“मुझे मालूम था मेरे पिता आज यहाँ आने वाले हैं।”

जहूरन उसी स्वर में बोली—“आपको मालूम होगा, पर मैं तो आपके पिता की सूरत से भी वाकिफ नहीं, गोरे हैं या काले!”

करोड़ी ने समझा, शायद हलखोरवा और भनसरवा साले ने अब बातें उनसे कह दीं, इसी कारण वे न आए, नहीं तो जहूरन मुझसे झूठ न बोलती। वह प्रेमालुर हो जहूरन से लिपट गया, प्यार भरे मान से जहूरन ने भी जरा इधर-उधर करना शुरू किया कि हठात करारी खीख पड़ा—“अरे वह क्या? माँ—!”

फिर उसकी बोलती बन्द हो गई, जैसे किसी ने उसकी जुबान खींच ली। जहूरन भी काँपती सी दूर जा खड़ी हुई, उसके चेहरे पर हवाइयों उड़ रही थीं। वह अभागिन इस देवी के बति और पुत्र



दोनों पर ही डाका डाले, अपने घर में छिपाए बैठी थी। अपराधी का हृदय सशंकित होता ही है।

सेठानी ने कड़क कर पूछा—“करोड़ी ! तुम तो यहाँ और बाबूजी कहाँ ? बोलो ! करोड़ी नम्रतापूर्वक बोला—“मैं तो यहाँ उन्हीं को ढूँढ़ने आया था माँ !”

सेठानी—पर ढूँढ़ते-ढूँढ़ते तुम भी खो गये ! क्यों ! भूटे बद-माश ! शर्म करो, घर में जवान लुगार्ई बैठी है, और तुम इस कुत्ती के पास ‘बाप-बेटे’ दोनों ही मुँह काला करने और आपस में लात जूता करने आया करते हो । बता री ! ओ बेरिया ! सेठजी को कहाँ छिपा रखा है ।

जहूरन—काँपते कण्ठ से—“सरकार वे नहीं आये यहाँ !”

सेठानी—“नहीं आये यहाँ ? अच्छा ! अरे हलखोरवा तुम दोनों ढूँढ़ो तो मालिक को, अभी सब पता चल जाता है ।

हलखोरवा और मनसरवा दोनों ढूँढ़ने लगे । हठात् हलखोरवा का हाथ उसी आलमारी पर पड़ा, जिसमें बन्द पड़े बेचारे सेठजी का प्राण मारे गर्मी और घबराहट के आघ घन्टे से सक्-फक् हो रहा था । हलखोरवा का हाथ ज्यों उस आलमारी पर पड़ा कि सेठजी ने समझा—“अब क्या अब तो पकड़े गये, मारे घबराहट के उनके मुख से एकाएक निकल पड़ा—“हूँक् हूँक्-हूँ-ऊँ-ऊँ-ऊँ ।”

“अरे वाग रे वाग ! अरे-भूत रे-भूत ! परतच्छे (प्रत्यक्ष) प्रेत रे बदा !” चिल्लाता हुआ हलखोरवा जो वहाँ से उछला तो भहराता हुआ सेठानी के पैरों पर आ गिरा । उसका शरीर स्तब्ध हो गया, और मारे डर के वह झूमने लगा ! सेठानी ने कहा—क्या है रे ! क्या है रे !! ओह ! कहीं मृत है ! हलखोरवा ने काँपते हुए बताया—उ—उ—उरी, आल-आलमारी में । कहता है—हाऊँ-हाऊँ ! खाऊँ खाऊँ !”

सेठानी ने स्वयं उस आलमारी को खोला। पसीने से लथपथ परीशान शकल सेठजी बाहर निकले। उनकी आँखों में विवशता थी, दया याचना थी। करोड़ी क्रोध से काँपता जहूरन को घूर रहा था, उसके नेत्रों में विलोभ था, ज्वाला थी, और था उग्र प्रतिहिंसा का क्रूर भाव।

जहूरन शर्म से मरी जा रही थी, उसके नयनों में निराशा थी— भय था, और था अपने पापों के लिए घोर पश्चात्ताप।

दोनों भौंचक थे, घबराये थे, स्वामी की दशा से दुःखी थे।

सेठानी प्रसन्न थी, उनके नेत्रों में क्षमाशीलता थी, और था अपनी विजय पर अपार हर्ष। व्यङ्गपूर्वक उन्होंने कहा—चलो घर। धन्य हो तुम दोनों—“बाप-वेदे ?”

## ११

### कविवर घोंचानन्द जी

कविवर घोंचानन्द जी ने अपना शुभ नाम क्यों ऐसा वेतुका भोजन रख लिया, कवियों के सुनहले कल्पना-संसार से एकदम अपाश्रित, अनभिज्ञ, हुआ एक संसारी आदमी— जिसके सर प्रतिगल घोंच रामदास गोंड के प्रेम-गिराणियों की गीति—“भूत-देख-लकड़ी” की राक्षसी निन्ता नाना करती है—ज्या कारण बता सकते हैं। इसे तो शायद सब कोई बला सुनार कविपुञ्ज ही बता सकते हैं, जो शैली कीदृश, भवभूति और कालोद्धार की आत्मा लिये भय-अमण कर रहा हो।

संक्षेप में हमने यही सुना था कि कविवर धोंचानन्द जब परीक्षा भवन में ही अपने एक सहपाठी की नकल करते, ठीक संध पर ही पकड़े गये तो परीक्षक ने एक लम्बी फटकार बताकर परीक्षा-भवन से इन्हें निकाल बाहर करवा दिया। इस सुघटना से कविवर धोंचानन्द जी को इतनी खुशी हुई कि शायद उतनी खुशी मुसोलिनी को अवीसीनिया विजय करने पर न हुई होगी। “चलो रंट से पिण्ड छूटा, अब खुलकर कविता-कामिनी की आराधना होगी।” परन्तु कविजी के जीवन की यह सुघटना उनके पिता श्री पण्डित जी महाराज के हेतु “रास तफरीह” से कम वज्र-प्रहारक न हुई! पर वे करते क्या ‘राष्ट्रसंध’ की भाँति मन-ही-मन कल्प कर रह गये। वे जानते थे हमारी विलब्रिलाइट का अणु-मात्र भी असर इस मूर्ख कुवंश पर न पड़ेगा, जैसे “राष्ट्रसंध” की “नकधुनौअल” का प्रभाव मुसोलिनी पर न पड़ा। वे सब प्रकार अपनी स्थिति की अनुपयोगिता—आवश्यकता समझ चुके थे, इस हेतु उन्होंने चुप हो रहना अपने लिए कल्याणकर समझा। पर उनकी इस अग्रखंड मौन-वाधना का अर्थ उनके गहन काल्पनिक सुपुत्र कविवर धोंचानन्द जी ने यह लगाया—“हमारे जीवन की इस सुन्दर सुघटना पर पिताजी भी प्रसन्न एवं घोर तृप्त हैं, और उनकी इसी कल्पना का सुन्दर सम्बाद जब पिताजी के कर्ण-कुहरो में बन्दूक की गोली-सा सन्सनाता घुसा तो वे मारे क्रोध-पीड़ा के बोलताकर बोल उठे—“गैंग है अभागा!” बस आपके इस शुभ नामकरण का यही संक्षिप्त इतिवृत्त है।

X                      X                      X                      X

कविजी के पिताजी—श्री पण्डित जी अपने कमरे में बैठे, अपने “केत” के कामजों को उलट-पलट रहे थे। आसला था, उनके मोत्र की एक विश्वा अपने एक भाई को मोद ले चुकी थी, और उनी मोद को नाजायज कभी के लिए पण्डित जी का खाना मोना दसम हो रहा था। क्योंकि अपने परम सुन्दर बबुआ बोंधू के लिए भी तो कुछ

“दाल-रोटी” का जोगाड़ कर सुरलोक सिधारना पितृकर्मों में ही सम्मिलित था। अपने कर्मानुसार तो विचारे दोनों पिता-पुत्र कबसे भूँजा पाँके रहे थे। भविष्य में जो कुछ आशा थी, उसे घोंचू का कवित्व प्रेम ले डूबा। अब तो खामखा कुछ प्रबन्ध करना अवश्यक ही था। पिताजी तो इधर पुत्रहित कामना में रत थे, और उधर पुत्र जी कविता देवी की उपासना में बेहोश थे। कागज देखते ही देखते पण्डित जी ने पुकारा—घोंचू ! अबे ओ घोंचवा ! सुनता नहीं रे ! मर गया क्या रे ससुर।

परन्तु उधर घोचानन्द जी जिस अथाह कविता-सागर में पड़े ऊम-चुम हो रहे थे, वहाँ पितृ-पुकार का प्रवेश ही कहाँ था ! वे तो बेसुध थे कविता पाठ में। झूलमार कर—पुकारते-पुकारते हारकर, स्वयं पण्डित जी बड़बड़ाते उठे और उनके कमरे की ओर गए। किन्तु जो दृश्य देखा कि ठिठके रह गये। पागलों की तरह दोनों हाथ बेतहाशा भौंज-भौंज कर बड़े जोशो-खरोश से जाने क्या घोंचू पण्डित बड़बड़ा रहे थे। पण्डित जी ने तनक, कान भिड़ाकर बगौर इसे सुन लेना भी मुनासिब समझा। आखिर यह क्या फितूर है, इसमें कौन-सा मजा है जो इस कम्पस्त के दिमाग में कुतुहल की भीतर की भीति गड़ी है। किवाड़ में कान लगाकर पण्डित जी ने सुनी अपने सुपुत्र की काव्य रचना !—

अरी ओ ! उहर जरा री मधुवाला ।

व्याकुल हैं मेरे प्राण पिलादे तू प्यारी हाला ।

ओ मधुवाला—!

ले दाल, दाल, मेरे कातर कण्ठों में !—

कल, कल, कल—छल, छल, छल !!!

आह—! पल पल पीड़ा से प्राण थकित है ।

आहों से घोर व्यथित है ॥

हूँ जग जीवन से तङ्ग—भङ्ग से जमा न अच्छा रङ्ग ॥

प्रिये तू ढाल, प्रिये तू ढाल

वही—!

कल् कल् कल्—सुना दे—छल् छल् छल् !!!

सूक आहां की है भरमार—न बजता हत्तंत्री का तार

अरी ओ प्यारी मधुबाला—पिला जल्दी कर तू हाला

खुला है असुर-सा मैं।

उड़ेल धड़ाधड़ हाला तूँ ॥

वही फिर—

कल् कल् कल् कल् कल्

हायरी

छल् छल् छल् छल् छल्

पण्डित जी अब ज्यादा बर्दाश्त न कर सके। अपनी इस साठ साल की लम्बी उमर तक कभी उन्होंने ऐसी “हाला” की “कल-कल” “छल-छल” कविता न सुनी थी। वे बाहर ही से चिह्ना पड़े—अरे समुर धौलगा, किग मरदूत से तेरे को ऐसी कविता लिखजाई। न कहीं थमक, न कहीं नागतील की भर्थादा, और न अर्थ भाग का पता। जा अभानो, हमने तो समझा था कि जलाना न पाए नका तो क्या हुआ, कवियों की भी प्रतिष्ठा होती है, पर इस “मधुबाला” की ‘हाला’ वाली कविता से तेरे को कौन पूछेगा? तूँ धौच ही नहीं पूरा पागल भी है।

बाप के ऐसे शुभाशीष श्रवण कर धौचानन्द बौलला उठे। वे उनके जूते-लात सहर्ष सहन कर सकते थे, परन्तु अपने कवि-कर्म पर पिता का यह निर्मम पाद-प्रहार उनकी सहनशक्ति के परे था। वे मायिकार दृष्टापूर्वक बोले—“अब ‘सूर’ ‘तुलसी’ और ‘विहारी’

का जमाना लद चुका, अब तो “द्वैत” में “अद्वैत” की भावना, “साकार” में “निराकार” की स्थापना एवं “ससीम” में “असीम” की कल्पना करना ही कुशल कवि-कर्म समझा जाता है। और—

“अबे चुप भी रह रे पगले—” पण्डित जी ने बीच ही में डोंटा—“बड़ा चला है दर्शन-शास्त्र छोटने ! “हाला” और “मधु-बाला” की प्याली इन्हें निराकार और साकार के भेद-भाव समझने देगी ? अरे जबतक जिन्दा हूँ तबतक खूब “ढाल-काट” “हाला” और “मधुबाला” की करलो, फिर तो तेरे को कोई घास छीलने को भी न पूछेगा रे बेहूदा !

घोषानन्दजी चुप हो रहे, यह सोचकर कि इस पुराने छुकड़े को वे अनन्त पथ पर क्यों घसीटें ?

पण्डितजी चश्मे के भीतर से उन्हें कड़ी निगाहों से घूरते हुए बोले—“अच्छा सुन, वा० चतुरानन सहाय वकील का डेरा तो तुमने देखा है ?

घो०—कौन चतुरानन सहाय ? जो नारिअल वाली गली के नुक्कड़ पर रहते हैं, जहाँ कविवर घोषावसन्त जी का वासस्थान है, वही न ?

पण्डितजी ऊबते से झुंझलाकर बोले—हत्तरी घोषावसन्त की ऐसी तैसी ! मैं पूछता हूँ वकील का डेरा, यह बताता है घोषाकवि का वासस्थान ! अबे वहाँ घोषा, सेवार, सितुहा, दोहना, मगर-घड़ियाल, कोई नहीं रहते, सिर्फ वकील साहब की ही वहाँ पोखती इमारत है। समझा ! ले यह कागज, देख अच्छी तरह सँभालना, वही गोद वाले मामले के उन अरम कागजात हैं। कतरार जो कली सोना ! इसे ले जाकर तुम उन्हें दिखलाओ बिना वे बहुत के बिबे तंगर हो जाएँ, तबतक मैं भी आता हूँ। तुम जानना, क्या सलीकसे ये अड़े वा सके तो ?

कपड़े की एक छोटी सी टुकड़ी में कविवर घोंघानन्द जी ने कागजों को गुलटकर बाँध लिया और चल पड़े ।

× × × ×

अपने मुहल्ले की गली से चक्कर काटते वे ज्यों सड़क पर आये कि हठात् उनकी कविरल “कुक्कुट” जी से मुठभेड़ हो गई । कुक्कुटजी ने छूटते ही पूछा—“क्यों भइय्या घोंचू, यह कॉलों की कन्दरा में ‘बाली’-सा किस ‘रावण’ को दबाए बैठे हो, क्या कोई नवीन कृति है ?

घोंचूजी सखेद बोले—ना भाई, यह मुकद्दमे का बवाल है ।

कुक्कुट जी भौं सिकोड़ कर आश्चर्य से मुँह बाकर बोले—“ऐं—! क्या कहा ? मुकद्दमे का कागज ? अरे भले आदमी, भला मामले के रही कागजों से, जिसमें न तो कुछ कला है, न कविता, केवल सूखी-सूखी “गिटपिट” की बकबास है, उससे और हम कला-प्रेमियों से क्या सरांकार । राम ! राम !! अजी फँको भी इस कुड़े को । आओ चलो हम तुम्हें अपनी एक नई रचना सुनायें । घोंचूजी सकपकाते हुए बोले—मगर यार इन कागजों को तनिक बा० चतुरानन सहाय वकील को दिखलाना भी आवश्यक था । पिताजी की कड़ी ताकीद—

“अजी मारो चतुरानन, पंचानन और दशानन सहाय को—” कुक्कुट जी बीच ही में उलझ पड़े—तुम्हें मालूम नहीं, कोमल कल्पना और कठोर कचहरी से गुड़-मिर्च सा नाता है, कविता जितनी मीठी होती है, कचहरी नागडालिन उतनी ही तीती होती है । सब जानो कचहरी की सरपट दौड़ में तुम्हारे कवि-कल्पना की “टाँग” हट न जायती, नेरे नाम बिछी पाल रखना । चलो-चलो तनिक मुनां सो तां मेरी बहिना, बिलकुल निराली और मौलिक रचना है । ईश्वर की शोभना, चाँक पड़ोगे उसकी भगतमयी कोमलकाज पदा-गतिमें को नुनकर । कवि संसार की एक नई और बिलकुल नैजोड़ अनमोल कृति दी है मैंने ।

कविवर कुक्कुट जी ने अपनी कविता के सम्बन्ध में कुछ ऐसे लुभावने ढङ्ग से बातें की कि धोंचानन्द उनकी कविता सुनने के हेतु कुछ व्याकुल और उत्कण्ठित से हाँ उठे। उन्होंने कहा—“अच्छा चलो, दो मिनट सुन भी लें।”

दोनों ही कविवर कमरे में आए और कविता पाठ प्रारम्भ हो गया। “देखो इस जोड़ की चीज यह है, मैं सुनाऊँ।”—“देखो यह पद सूर” और “बिहारी” की भी कल्पना से भी परे है।”—“जरा इसे सुन लो, पन्त, प्रसाद, निराला, भी तो क्या खाक ऐसी ऊँची कल्पना करेंगे।” दोनों ही कवि-पुङ्गवों में इसी प्रकार बातें होने लगीं। दोनों ही कला-प्रेमी अपनी-अपनी रचनाओं को संसार की सर्वश्रेष्ठ कृति, अमर रचना बताने में उलझे पड़े थे। कुछ देर बाद-विवाद होता, फिर कविता पाठ। फिर आलोचना-प्रत्यालोचना और फिर कविता पाठ। गौडस्मिथ, दान्ते, शेक्सपियर, भवभूति, दण्डी आदि सभी देशी-विदेशी कवियों को इन कवि-केहरियों ने परास्त कर उनकी अयोग्यता का फतवा दे दिया। और दोनों ही कइर कला-उपासक सज्जन कविता-पाठ की धुन में जो डूबे फिर उन्हें काहे को समय-बेला का ध्यान रहता? १२ बजा, फिर एक-एक करके एक-दो-तीन-चार और पाँच! परन्तु जब कमरे में पूरी तरह अन्धेरा छा गया तब कविवर धोंचानन्द के कलाप्रेम ने करबट ली। वे कुछ धवड़ायें से भरायी हुई आवाज में बोले—“अरे यार शाम हो गई, और अब तक हम यहीं अँटके रहे। आज कुशल नहीं। राम जानै मामले का क्या हुआ?”

कुक्कुटजी लापर्वाही से बोले—“तुम भी यार अभी गोबर के गोबर ही रहे! अभी कवि जी, जो कलावतार है, वह बेला-माली का राश्ट्र का पावन होता ही नहीं! वह तो चाहे गौँध स्वच्छन्द एवम् निर्द्वन्द्व होता है। और सब मानों जिसमें ऐसी स्वच्छन्दता का अभाव



है वह करोड़ों वर्ष नाक रगड़ने पर भी कवि तो क्या कवि की पूँछ भी नहीं बन सकता। सच्चे कलाकारों की पहली पहिचान है, उनकी स्वच्छ-न्दता। वे किसी हुकूमत और नियन्त्रण के कायल नहीं होते। क्या नहीं सुना है—“कवियोः निरंकुशाः।”

कुक्कुट जी ने कलाकारों की पहिचान की जो व्याख्या की, उसे श्रवण कर परम कलाकार कविवर घोंचानन्द जी का कवित्व-मान कुछ सुगुगाया। कुछ धीरज भी बँधा। वे बड़ी शान से बोल गये—अच्छा जी, क्या पर्वाह, देखा जाएगा। कचहरी से हम कौन कम आहम् कार्य में लगे थे। पर वे जब सड़क पर आये तो उनका दिमाग चौड़ा पड़ गया, धीरज पल्ला छोड़ गया, बुद्धि चकरा गई, वे आप ही आप बोल उठे—“बाप रे, सुबह के बैठे-बैठे शाम हो गई। बाबूजी गुस्से में लाल तवा से होड़ ले रहे होंगे। हे भगवान, मुकद्दमे में कुछ गड़बड़ी न हुई हो।” मुकद्दमे की बात याद आते ही घोंचूजी और विकल हो गये और रहा सहा होश भी हिरन हो गया। बाप की उग्र कर्कश मूर्ति यमदूतों की नाईं उनके नेत्रों के सामने नाचने लगी। वे बेहोश होकर गिरने ही को थे कि एक लालटेन-पोस्ट से उठकू गये, उनकी आँखें बन्द हो गईं।

जैसे किसी ने बड़े जोर से उन्हें भिक्कभोर दिया। हड़बड़ा कर उन्होंने ज्यों आँखें खोलीं, देखा, सामने पिताजी की व्याकुल और व्यग्र सप्राण-प्रतिमा क्रोध से दत्त-कोणले के चङ्कार-सी बनी खड़ी है। पिताजी कर पर दुहत्थर गानकर बोल—रे गदहे, आज सब दिन का निमत भराया तूने गंदहार कर दिया? अरे अभाग आहमक! तब तब को वकील के यहाँ जाना मंजूर न था, तो उसी दम गुफसे क्यों भ कड़ दिया—“मैं कविता का मजा लूँगा, वकील के घर न जाऊँगा।” तो अब फाँकता रह पूँल, और ढालता रह “हाला” का हलाहल। तब रे बाप, सुबह का निकला-निकला अब दर्शन

दिया ? सारे नगर का कोना-कोना छान मारा, पर तेरा पता काहे को लगे ? और आचारों का पता पाता ही कौन है ? मुकद्दमा चौपट हुआ अलग, परीशानी हुई अलहदा । ला, दे, सब कागज-पत्तर कहाँ हैं ?

घोंचूजी को अब याद आया—“हे भगवान कागज तो कुक्कुट जी की कोठरी में ही छूट गया । यह भूल पर भूल !” बेचारे दम साधे रह गये । पिताजी फिर सिंघाड़ते हुए बोले—“अरे कविता ने तुझे बहरा भी बना दिया क्या रे ! बता सब कागज कहाँ है, या उसे भी कहीं गँवा आया ? बोलता है कि लगाऊँ—

डरते-डरते रुक-रुककर घोंचूजी बोले—व—व—व—वह,—क—क—कवि—व—र, कु—कु—कुक्कुट जी के डेरे पर ही धोखे से छूट गया ।

ललाट पीट कर परिहृत जी बोले—रे चाण्डाल, तेरा सत्यानाश हो । क्या तूने उसे अपनी कविता वाले कागज से भी गया गुजरा समझा रे मूर्ख ! जिसपर तेरी दाल-रोटी, आवरु-इज्जत, का बारोमदार है ! जा, ससुर अब भीख माँगोगे ।

पिता पुत्र दोनों सर पर पैर रखकर दौड़े । उस समय कविवर कुक्कुट जी, उस सरकारी कागजोंमें से एक की पीठ पर कविता रगड़ रहे थे और मन ही मन कागज की सुन्दरता, सुचिह्नता पर परम पुलकायमान हो रहे थे । परिहृत जी ने जा अपने प्राणवत् आवश्यक कागजातों की यह दुर्गति देखी, उनकी आँखों में आग बरसने लगी । भ्रष्ट कर उन्होंने कागजों को छीन लिया कि कुक्कुट जी चीख पड़े—अर्जी हौं, हौं, यह क्या किया साहेब ! आप तो बड़े दो नालूम होते हैं । अर्जी रुकिए रुकिए, उन्हें नहीं सुन्दर सत्य कविता है, अर्जी जनाब लोकान्तर रचना है, अमर कृति है । सत्य, रहस्य, मुझे दूसरे कागज पर खामनें उतार लेने चाहिए ।

“अरे भाइ में जाओ तुम, और चूल्हे में तुम्हारी कविता !

बदमाशों तुम दोनों ने मेरा संहार कर दिया ।” कहते हुए पण्डित जी कागज़ लिये भागे घर की ओर और उनके पीछे—हाय ! मेरी कविता ! हाय मेरी कविता !! चिल्लाते कुक्कुट जी भी दौड़ चले । और कविवर धोचानन्द फिर वहीं बैठकर काव्याराधना में लीन हो गये ।

## १२

### दो सौन्दर्य पारखी

“पब्लिक पार्क्स” आजकल लोगों के लिए कई कारणों से नेहायत फायदेमन्द और बड़े सुफीव साबित हो रहे हैं । क्योंकि वहाँ मनोरंजन, दिलबस्तगी और “माइन्ड रिक्रेशमेन्ट” के अनेक साधन, एक ही जगह बिलकुल धरे-धराये मिलते हैं । चाहे आप किसी रुचि और विचार के हों, वहाँ आपके भी दिल-बहलाव के हेतु कोई न कोई चीज़ अवश्य ही देखने को मिल जायगी । अगर आप कवि हैं, और कूप-बापी, वन-बाटिका के प्रेमी हैं तो पार्क में वह भी मौजूद है । यदि आप प्रकृति-प्रेमी हैं, तो देखिए बावली में रङ्ग-निरङ्गी मछलियाँ “सुर-सुर” करती भागी जाती हैं, बत्तख “चल-चल” करते तैर रहे हैं, अनेक पुष्प-लतिकाओं और वृक्षों से पार्क भरा पड़ा है, लूटिये खूब प्रकृति-शोभा का आनन्द और “बिलकुल सुक्त” ! हाँ, और अगर आप सौन्दर्य-दर्शन के प्रेमी हैं तो इस परम पदार्थ का भी यहाँ अभाव नहीं है । एक-सी-एक सुन्दरी तुलुमारियों, विविध वस्त्रालंकार-विभूषिता यहाँ पधारती हैं, गोंके की जगह तलबीज़ कर

आँखें बिल्लाए पड़े रहिये, फिर पीजिए खूब डटकर रूपसुधा, न रोक है न दोक। चाहे आप दिनभर, रात भर पड़े-पड़े शोभा माधुरी का प्रिय प्रसाद चखते रहें, भय की कोई आशंका नहीं।

हम समझते हैं, हमारे मुहल्ले के दो विकट सौन्दर्य-पारखी सज्जन इसी सौन्दर्य सुधापान की ही प्रबल लुधा-पिपासा से प्रतिदिन पार्क में पधारते थे। दोनों ही सज्जन समवयस्क थे। जवानी का जमाना था, चेहरे पर लागझीं लोट रही थी, मुखड़े पर मस्ती भूम रही थी। ईश्वर ने इन्हें रूपवान भी बनाया था और उस रूप को सजाने की इन्हें तर्कीब भी मालूम थी—सौन्दर्य पारखी ही तो ठहरे? अमीर आदमी के बाल-गोपाल थे, किसी कालेज के विद्यार्थी थे और गर्मी की छुट्टियों में घर तशरीफ लाए हुए थे।

X

X

X

X

ग्रीष्म की ठण्डी सन्ध्या, ईश्वर के अशेष अनुग्रह का प्रतिफल। पार्क में छिड़काव हो चुका था। फव्वारे खुल गये थे, और उनसे वारिबृन्द की भौंति जल फुहारें मार रहा था। पार्क-प्रेमियों का एक बड़ा-सा काफला भूखे भिखारी की भौंति पार्क में घँसता चला आ रहा था, और उसमें हमारे ये दोनों “सौन्दर्य पारखी” सज्जन भी थे। अच्छा हो आप लोगों के शुभनाम भी आप सुन लें। एक का नाम तो राधासोहन बाबू है और दूसरे का कृष्णसोहन बाबू। यह राधासोहन और कृष्णसोहन की अद्भुत जोड़ी पार्क-परिक्रमा कर रही है और परस्पर बातें भी हो रही हैं।

राधासोहन बाबू बोले—वर्यो भाई कृष्णसोहन, आज तो पार्क का रक्त ही कुल्लू गिराला है, पर भाई, अचानक हमारे लावक कोई नीज नजर न आई। क्योंकि हम बेजान और बे-जुवान “नेचर” (प्रकृति) की गूक और निरर्थक शोभा के उपासक नहीं। यदि निडरियों की “नै-नै” सुगंधों की “टै-टै” और वृक्ष लताओं की “सॉ-सॉ” में

ही सङ्गीत की मोहिनी ध्वनि होती तो, “वीणा” “बेला” और “सितार” आदि के आविष्कार की कोई आवश्यकता न होती और न गायकों को ही कोई महफिलों में बुलाता। यही ‘बत्तख’ ‘बुलबुल’ पपीहरे-टिटहरी आदि पिंजड़ों में बन्दकर महफिलों में रख दी जाती और इन्हीं की सङ्गीत सुधापान कर लोग परितृप्त हुआ करते। क्यों ?

समर्थन के शब्दों में कृष्णमोहन बाबू बोले—“हाँ इसमें क्या शक !”

अब बातों का सिलसिला कुछ दूसरी ही ओर मुड़ा। राधे बाबू ने कहा—“अच्छा तुमने तो उसे देखा है ?”

भौंचक से कृष्ण बाबू बोले—“किते—?”

मर्मभरी मुसकुराहट से सङ्केत करते राधा बाबू बोले—अरे—उसे—उसे—!—ओफ़! तुम भी यार कभी-कभी किस बलबल में धँस जाते हो। अजी उसे—उस गली के नुक्कड़ पर रहने वाली को—समझे—?

“ओ—समझा समझा !” प्रसन्नकृति से कृष्ण बाबू बोले—“वही न जो चलती है तो बड़ी ऐंठकर।”

“हाँ, हाँ, वही—वही—“हा, हा, हा, हा”—राधे बाबू हँसते हुए बोले—“अच्छा यार वह भी क्या समझती है अपने को ? मैं भी हूँ कोई परीजाद ? क्यों ?”

कु०—सिर्फ परीजाद भर ही नहीं, अजी साहब उसकी आँकड़ और ऐंठ तो डंके की चोट यह बताती है कि अगर कहीं संसार भर की सारी ओमाशों का एक ती “एडोशन” है, तो वह मैं हूँ।

“हा, हा, हा, हा, हा, हा—” एक डबल ठहाका लगाकर राधे बाबू नाँले—“अब उरगती महज नादानी है, उस बेवकूफ को पता नहीं खुदसूरती किसे कहते हैं, उसकी जरा-सी मौल भी उसे नहीं मिली। खैर, इस चटक-मटक पर मरनेवाले कोई और चौधरचन्द

होंगे, यहाँ तो सारा “नख-शिख” रटे बैठे हैं। सौन्दर्य की एक-एक बारीकियों के गहरे पारखी हैं। इस नकली चटक-मटक के चकमें में हम क्यों जूझने चलें ! क्यों ?

कृ०—हाँ हाँ, इसमें क्या शक !

सहसा इसी समय दोनों सज्जनों को मुन पड़ा, एक १२-१३ वर्ष का बालक कह रहा था—“महाशय जी, तनिक बगल हो जाइए।”

किनारे हटते हुए इन दोनों सज्जनों ने देखा, बालक के पीछे एक वृद्धा हैं, जिनके अगल-बगल चार सुन्दरी सुकुमारियाँ बङ्गीय ढङ्ग से बड़ी बेशकीमत साड़ी पहने, बड़े आकर्षक ढङ्ग से अपने को सजाए, साथी गाड़े, बड़ी ही मन्थर गति से—आहिस्ता-आहिस्ता मचल-मचल कर चल रही हैं। मानो उनके एक-एक पाद-प्रक्षेप में यह भाव छिपा बैठा हो कि, देखो वसुन्धरा हमारे सौन्दर्य भारावनत शरीर-भार को वहन कर सकती है या नहीं ? इन देवियों में दो साँवली, एक गोरी और चौथी तो एकदम सुफेद चमड़े की थी, बड़ा चमकता हुआ उसका रूप था। उन वृद्धा की दाहिनी ओर जो देवी थीं, वे कुछ वयस्का भालूम हो रही थीं, उनके नैनों पर जेन्टिलमैनी खूबसूरत फ्रेम का चश्मा चढ़ा था, और बगल से काढ़ी हुई माँग के मध्य भाग में सिन्दूर की एक बेहद बारीक लकीर जो सिर्फ आधी ही इच्च लम्बी होकर समाप्त थी—खिंची थी। अपने सौभाग्य का इतना छुद लड्डु रूप अपने मस्तक पर धारण किये, यह देवी जी बड़ी शान से अपने कदम सुचारक रख रही थीं। इनमें कुछ गम्भीरता थी, और रुआव भी। शेष तीनों सुवन्दियाँ या किशोरियाँ लक्ष्मियों से कुमारी ही जान पड़ती थीं। क्योंकि इनमें बड़ा तुलतुलपन था, और ये तुलडे पर बाल-तुलप चलाता। वे चलती जाती थीं और हँसती जाती थीं। इसमें शुबदा नहीं कि वे अपने हाथ पर विजय-प्राप्ति के हेतु पूर्णरूप से प्रयत्नशील थीं, पर उनकी अवस्था-व्योम्य अरुद्धता उन्हें सफलभूत

न होने देती थी। वे जितना भी जोर लगाकर अपनी हँसी को दबा रखने की चेष्टा करती थीं, उनकी वह हँसी उतनी ही ताकत से बलबला कर ज्वालामुखी की भोंति फूट पड़ती थी। बेचारी बड़े धर्म सज्जट में थीं।

×                      ×                      ×                      ×

राधे बाबू, कृष्ण० बा० का पञ्जा जोर से चौपटे हुए बोले—  
“अरे—अरे—तनिक उसे—उस बीच वाली को—बगौर देख लो, देखो—देखो—तुम पहले उसे अच्छी तरह देख लो तो फिर बताऊँगा। देखते हो न?”

कृ०—उस गोरी-गोरी-सी पतली को न, जो मुँह पर रेशमी रुमाल दिये मुसकरा रही है। क्यों उसी को न?

रा०—हाँ—हाँ, उसी को—देखना भाई खूब गौर से देखना, कुछ भूल-चूक न हो, नहीं तो फिर जब सौन्दर्यालोचना होने लगेगी, जब तुम कह उठोगे, यह नहीं देखा, वह नहीं देखा, तो भारी कबाहट होगी।

कृ०—हाँ, हाँ, मैं खूब ध्यान से देख रहा हूँ। आप इस्तिनास रखें।

×                      ×                      ×                      ×

रा०—देख चुके न?

कृ०—हाँ!

रा०—खूब गौर से न?

कृ०—जी हाँ।

रा०—कुछ भूल-चूक तो नहीं हुई देखने में, सर से पाँव तक बगौर देख चुके न?

कृ०—हाँ, हाँ।

रा०—अच्छा अब बताओ उसमें क्या-क्या खूबियाँ हैं, और क्या-क्या ऐब हैं।

कु०—बेहद पतली है।

रा०—और—?

कु०—चाल में लोच नहीं है।

रा०—अच्छा और?

कु०—बड़ी नादान है।

रा०—यह भी ठीक। अच्छा और!

कु०—अपने को सँभाल रखने में असमर्थ है।

रा०—अच्छा यह भी सही। और—!

कु०—बड़ी चञ्चला है?

इस बार राधे बाबू कुछ झुंझला से पड़े और बोले—अरे तुम भी यार क्या ऊपर ही ऊपर उतरा रहे हो। पते की बात कुछ भी नहीं कहते। नादान है तो पतली है, चञ्चल है तो अल्हड़ है, अजी भला यह भी कोई सौन्दर्य की परख है। यह तो बाहरी चीजें हैं जो समय पर बदल जायेंगी। असल चीज तो मुखड़े और शरीर की बनावट ही है, जिसे सौन्दर्य कहते हैं। इसकी वास्तव कुछ अपनी “ओपी-निग्रन” दो।

कु०—इसे तो आप ही बताएँ तो उत्तम हो।

राधे बाबू कुछ गम्भीर होकर बोले—“अच्छा तो सुनो मेरी राय। मुखड़ा आकर्षक तो जरूर है, पर उसका आकर्षण युवा-काल तक ही सीमित है, क्योंकि उनका “कट” लुभावना नहीं है। ओखें बड़ी हैं जरूर, परन्तु उनमें मादकता नहीं है। माक ज्यादा नोकदार नहीं है। गाल अच्छे हैं, पर उसकी लालिमा अपनी नहीं—रेंगाई की है। होठ नीचे का कुछ मोटा और भद्दा है। दाँत सब एक से और एक साइज में नहीं हैं। ठुब्ही किसी तरह अच्छी कही जा सकती है।



कमर सुन्दर है। शेष रहा पतलापन तो, वह खिला-पिलाकर स्थूल किया जा सकता है। ट्रेन करने से चालों में लोचदारी भी आ सकती है। अपने को सँभाल रखने की योग्यता भी आ सकती है। पर इन चीजों की मरम्मत, इन चुटियों का संशोधन जो हमने बताया है—कभी नहीं हो सकता। क्यों ?

राधे बाबू द्वारा अपनी सम्मतियों का इस प्रकार धजी-धजी उड़ती देख, कृष्णमोहन बाबू का अपने सहज सौन्दर्य-ज्ञान का मान भड़क उठा। वे कुछ दृढ़तापूर्वक तनक रुखाई से बोले—“आपकी इस राय से हम सहमत नहीं। क्योंकि मुखड़ा जब आकर्षक है तो उसका “कटू” क्यों न लुभावना होगा ? जब तक किसी चीज़ की बनावट अच्छी न होगी तब तक वह आकर्षक होगी ही नहीं। आकर्षक का अर्थ ही है सौन्दर्य। बाकी रहा युवाकाल की समाप्ति के पश्चात् आकर्षण नष्ट होने का प्रश्न। तो मैं पूछता हूँ, उमर ढलने पर किसमें युवाकाल की वह सुन्दरता और आकर्षण रहता है ? आखँ जब बड़ी होगी, और वह भी एक युवती सुन्दरी के तो, मुमकिन नहीं कि उसमें भावकता न हो, आपने अवश्य देखने में भूल की है। नासिका की नोकदारी की कोई तारीफ नहीं, तारीफ उसकी सुन्दरता की है जो इस बाला में वर्तमान है। गाल सेव नहीं है, जो रंग रंगाचे पैदा होते हैं, हाँ उन्हें आप मलकर देखिए उसमें जालसाजी आती है या नहीं। होठ प्रायः एक ही साइज के होते हैं, व किसी बेमकूर मिस्त्री के बनाये नहीं होते जो दोनों को दो तरह, और बेमेल बनाकर भोंड़ा कर दे। मेरी जान में यह किशोरी सर्वाङ्ग सुन्दरी है।”

राधे बाबू को यह स्वप्न में भी विश्वास न था कि कृष्ण मोहन मेरी बातों का इतने उग्ररूप से धोर प्रतिवाद करेगा। वे तो उसे बग़ल में अपना पैला मर समझा किये पर, आज शिष्य गुद के सार जाल-पातों को विश्वास कर बिलकुल अपनी स्वतन्त्र सत्ता

स्थापित करना चाहता है। राधे बाबू बेहद चिढ़कर बोले—“तुम्हारी ये सब बातें बिना सींग-पूँछ की हैं। तर्क की कड़ी कसौटी पर तिलमात्र भी नहीं टिक सकती। यदि तुम्हें हमारी बातों का विश्वास न हो तो, चलो, और स्वयं देख लो मेरी बातों की सत्यता, अपनी बातों की निस्सारिता।”

“हाँ, हाँ, चलिए।” बड़े तैश में कृष्ण मोहन बाबू बोल उठे।

सौन्दर्य के ये दोनों पगले पारखी, अपनी-अपनी दीवानी धुन में उसी ओर चल पड़े जहाँ वे देवियाँ एक छोटी भाड़ी के निकट बैठी परस्पर हास्य-विनोद कर रही थीं। उन बेचारियों को क्या पता था कि दो पगले हमारे रूप की आलोचना-प्रत्यालोचना में उलझ सर कटाने पर तैयार हैं। अस्तु, ये दोनों सौन्दर्य-पारखी उनके निकट ही कुछ दूर पर अड़े, आँखें फाड़-फाड़ कर उन्हें देखने लगे। उनके चेहरे पर एक अजीब हैरानी और परीशानी छाई हुई थी। उन्हें इस दशा में अपनी ओर एकटक आँखें भिड़ाए देखकर वे युवतियाँ कुछ घबराई—“आखिर इनकी नीयत क्या है? ये क्यों भूखे गिद्ध की तरह हमें इस व्याकुलता से देख रहे हैं, मानो चबा कर ही छोड़ेंगे।” वे गरीबन अपने दिलों में ये बातें सोच ही रही थीं कि राधे बाबू गर्ज-कर बोले—“क्यों देखा? है कुछ?”

कृष्ण मोहन बाबू उसी स्वर में दृढ़तापूर्वक बोले—“हाँ देखा, क्यों नहीं है कुछ?”

रा०—क्या है?

कृ०—सुन्दरता है और क्या है?

रा०—हिशू! तुम बेहूदे हो। बेवकूफ हो।

कृ०—हर्षित नहीं। आप वहकिये मत, सिर्फ “संज्ञेय” पर बात काजिए।

रा०—मैंने जो कहा—क्या उस गोरी छोकड़ी ( उझली से बता कर ) में वह बातें नहीं है ?

कु०—कभी नहीं ।

राधे बाबू की उझली का संकेत अपनी ओर देखते ही वे भट ताड़ गई कि ये दोनों पक्षे शोहदे हैं, और इनकी नीयत खराब है । ताज्जुब नहीं कि ये बदमाश कुछ और शरारतें कर बैठें । उस वयस्का ने, लड़के से कहा—“जा पुलिस वाले को लिवा ला, कहना—“दो बदमाश हमारे घर की औरतों को बेहद बेढव तरीके से घूर रहे हैं, हमें शक है वे कुछ कर न बैठें । आप चलिए ।” लड़का उधर पुलिस को बुलाने दौड़ा । इधर औरतें भी कुछ सावधान हो गईं । उनकी हँसी-खुशी एक शंकाभय भय में बदल गई और सब की सब गम्भीर हो गई । मगर ये बेवकूफ अब भी आपस में उलझे ही थे ।

राधा मोहन ने फिर कहा—“मैं आज से समझ गया कि तुम बड़ी बाहियात व्यूटी को पसन्द करते हो । तुम्हें कला-ज्ञान रञ्जमात्र भी नहीं है ।”

कु०—मैं भी समझ गया, आपको भी सौन्दर्य-ज्ञान नहीं, सिर्फ आप अपनी पसन्द की बात करते हैं ।

रा० बा०—तनिक जोर से—“तो इस खूबसूरत छोकड़ी को तुम्हारी राय में सौन्दर्य के सारे उपकरण प्राप्त हैं ?

कु०—अवश्य ! आइये तनिक और निकट से निरखिये तो सब आप ही-आप खुलासा हो जाए ।

रा०—निकट दूर की क्या बात है ? हम तो निकट ही हैं, खैर चलो, चाहे जितना भी निकट से और खुर्बवीन लगाकर के ही क्यों न देखो, विजय मेरी ही होगी । लो बढ़ो ।

अब ये दोनों पारखी और आगे बढ़े ! इन्हें इस तरह आगे बढ़ते देख, वे औरतें जिनका धीरज इनकी पित्त-विशेष आकर्षणों की

देखकर पहले से ही छूट चुका था, बेतहाशा चीख उठी। चिल्लाहट जो पार्क में गूँजी, लोग दौड़ पड़े। “क्या है ! क्या है !!” सैकड़ों लोग पूछने लगे। उधर से पुलिसवाला भी लड़के के संग आ पहुँचा। वह बयस्का बोली—प्रायः आधे घन्टे से ये दोनों ही आदमो हमें परीशान कर रहे हैं। बार-बार हमें कड़ी नजरों से घूरते हैं, फिर न जाने आपस में क्या-क्या बातें करते हैं। हमें बार-बार यही सुन पड़ा—“सुन्दरी है ! सुन्दरी है।” अब के ये लोग हमारी ओर दौड़े आ रहे थे कि हम चिल्ला पड़ीं।

इस बयस्का की बात सुनकर लोग बड़े कुपित हुए और उन्हें डाँटते हुए बोले—“क्यों जी तुम क्यों इन्हें आध घन्टे से घूर रहे थे ? फिर इनकी ओर क्यों दौड़े ? आखिरश तुम्हारी क्या नियत थी ? ठीक बताओ नहीं तो अभी मारे घूसों-लात के तबाह कर दिये जाओगे बदमाश ! तुम्हारी यह शरारत ! शरीफ घर की औरतों को घन्टों से घूर रहे हो ? साफ-साफ जवाब दो।

अब इन दोनों सौन्दर्य-पारखियों की सारी सौन्दर्य-मीमांसा हवा खाने चली गई। वे जबाब दें तो क्या ? यदि कहें कि “हम इनका सौन्दर्यालोचन कर रहे थे—” तब भी बेभाव की पड़ती है, न जबाब दें तो भी पीटे जाएँ। “हाय-हाय” यह सौन्दर्य-ज्ञान बड़ा बेमौके दगा दे गया। धबड़ाई नज़रों से वे एक दूसरे को देख रहे थे। विकट समस्या थी।

—“क्यों जी तुम लोग बोलते क्यों नहीं ? फौरन जबाब दो, नहीं तो अब मेरा हाथ छूटता है।” एक तगड़े से सज्जन ने डंडा लानकर कहा।

उस मोटे से मुँडे को जब इन गुनाह सौन्दर्य-पारखियों ने आपने सर पर इन्द्र के यज्ञ पुस्त्य मँडराते हुए देखा, तब खमन्न भये, अन्ध चुप रहने से भी जान की खैर नहीं। राधे बाबू का कंठ खुला।

वे गिड़गिड़ाते हुए करवद्ध बोले—“श्रीमान् महाशय जी, हम चोर बदमाश नहीं, एक शरीफ औलाद और कॉलेज-स्टूडेंट हैं। हाँ हम इन्हें धूर जरूर रहे थे पर कोई बुरी नीयत से नहीं, सिर्फ हम दोनों साथियों में इस बात का झगड़ा था कि इन देवियों में सुन्दरी कौन है ? वस इसी को आप जो समझें, हमारी बदमाशी या शराफ़त। कहिये हम गङ्गा उठाव।

वे दण्डधारी सज्जन बोले—“बेहूदां ! यही क्या तुम्हारी कम शरारत है, इस सुन्दर-असुन्दर की परीक्षा के लिये तुम्हें भले घर की देवियाँ ही मिलीं ? इन्हीं पर अपने सौन्दर्य-ज्ञान की आजमाइश करनी थी तुम्हें ? छिः छिः ! तुम कहते हो हम कॉलेज के विद्यार्थी हैं, भला विद्यार्थियों के यही कर्म हैं ?” दोनों सौन्दर्य पारखी दम साधे चुप ज़मीन देखते खड़े थे और लोग इन सौन्दर्य पारखियों की बुद्धिमत्ता (?) पर खिलखिला कर हँस रहे थे। एक दूसरे सज्जन बोले—“चाहे इनकी नीयत जैसी हो, मगर इन्होंने बदमाशी तो जरूर की, और इसके लिये इन्हें कुछ सज़ा देकर यह सबक दे देना चाहिये कि फिर कभी ये सौन्दर्य-परीक्षा का होसला न करें।

कुछ लोग बोले—“जरूर-जरूर ! सौन्दर्य-ज्ञान का इनाम तो मिलना ही चाहिये इन्हें।”

वे दण्डधारी बोले—“अच्छा जी तुम दोनों, अपने-अपने कान पकड़-पकड़ कर बीस-बीस बार उठो बैठो, और इन सब लोगों से हाथ जोड़कर क्षमा माँगो, और प्रतिज्ञा करो कि अब से फिर कभी भूल कर भी ऐसी गूर्यता न करेंगे।

“मरता क्या न करता” दोनों ही सज्जन कान पकड़-पकड़ कर उठक बैठक करने लगे। विचित्र दशा थी इन बेचारे सौन्दर्य पारखियों की। ख़ौफ़ से शकल घबराई हुई, शर्म से चेहरा लुगलुगा !

फिर भी बेचारे दनादन उठ-बैठ रहे थे। और लोग मारे हँसी के मरे जा रहे थे। वे देवियाँ भी रुमाल से मुँह ढाँके हँस रही थीं।

बैठक समाप्त होते ही दोनों डाकगाड़ी की तरह भगे। रास्ते में राधे बाबू ने कहा—“दोनों आदमियों का सौन्दर्य-पारखी होना ठीक नहीं, देखो यह दोनों के सौन्दर्य-पारखी होने का ही कुपरिणाम है कि आज सर रंगते-रंगते बचा। या तो तुम्हीं रहो “सौन्दर्य पारखी” या मुझी को रहने दो। तुम जो कहो उसे या तो मैं मान लूँ, या मैं जो कहूँ उसे तुम मान लो। बोलो ?

क०—हाँ ठीक है, आप ही रहिये “सौन्दर्य पारखी”। मैं तो इसका फल पा चुका।

## १३

### पत्नी-प्रपंच

“हे भगवान, बीनानाथ, दीनबन्धु ! नर्क, जेल, सूली, सेल, लात-जूता, गरीबी, गुलामी, सब कबूल, सब मंजूर ! पर हे कृपानिधान, पत्नी नामधारिणी सज्जनियों के खसम के खूटे में मत बाँधो। हे महा-प्रभो ! और यदि तुम्हारी ऐसी ही अपरम्पार दया हो तो कम से कम प्रपंची पत्नी का “सति-दान” बनने का दुर्भाग्य न दो।”

क्या कहें, आगे की बातों के शीर्ष और उनकी इच्छाओं की दात ! जब मैं लॉअर पाइसले स्कूल के तीसरे वर्ष में पहुँचने को तैयार था, तभी मैं “वेस्टी ब्रॉड” शायनी-अन्ना “वेस्टियों” से तब आकर

अपना बवाल मेरे सर मढ़ने के लिये, मेरे घर पर भूखे गिद्ध की तरह मँड़राने लगे। जब पाठशाले से लौट कर आता तब देखता, दो-चार गिद्ध पंख फैलाए बैठे ही हैं, और ज्यों मैं सायबान में पहुँचता कि “सुनो बाबू” की पुकार होती। ये गिद्धगण मुझे चलाते थे, हिलाते थे, ऊपर-नीचे निहारते थे, फिर सवाल पूछते थे—क्या पढ़ते हो, “रामचन्द्र” का हिज्जे करो, एक पैसे का डेढ़ ग्राम तो ढाई पैसे का कितना?” रोज़ ही यह तमाशा था। रोज़ ही “सुनो बाबू” की पुकार! रोज़ ही वही सवाल! इतने जल्द-जल्द तो हमारे बूढ़े गुरुजी भी सवाल नहीं पूछते थे। उन दिनों हमें यह क्या मालूम था ये गिद्ध मुझे अपना भोजन बनाने की चिन्ता में मेरे घर आया करते थे। मैं तो यही समझता था कि ये सब किसी मदरसे के निकाले हुए गुरु हैं या “वर्किल पंडित” जो हमसे सवाल पूछ-पूछ कर अपनी हवस बुझाने रोज़मर्रा हमारे घर आया करते हैं। मेरे बाबूजी भी उस समय बैठे होते और मुस्कराते होते। मैं इनके सवालों का जल्दी-जल्दी जवाब देकर घर के अन्दर भागता। फिर बड़ी देर तक ये पिताजी से जानें क्या बकबक लगाये रहते।

एक दिन सुना, मेरी शादी होगी, शादी क्या बला है, मैं तनिक भी इससे वाकिफ़ न था। अच्छे-अच्छे कपड़े मुझे पहराये गये, बड़े सुन्दर-सुन्दर मूल्यवान गहनों से मैं सजाया गया, और बादशाह की तरह एक खूबसूरत तंज़ाम पर बिठाकर चँवर डुलाते मुझे लोग ले गये। मैं मण्डप में बैठा, मेरी बगल में मेरी पत्नी देवी भी कपड़ों में गठरी की तरह बँधी बैठी थीं, दूसरी ओर दाहिनी तरफ़ पुरोहित जी महाराज बैठे-बैठे कुछ बड़बड़ा रहे थे। उन्होंने अपने सामने रखे परतल ते भँना हुआ थोड़ा चावल, गुड़ और दही निकाल कर मेरे हाथों पर रख दिया, मैंने समझा यह प्रसाद है क्योंकि मेरे पाठशाले में प्रति “परिवा-तिथि” को इसी प्रकार चावल गुड़ के प्रसाद बँटते

थे, मैंने शीघ्र ही उसे मुख में भोंक दिया। सब लोग ठठाकर हँस पड़े, बाबूजी ने भी हँसते ही हँसते कहा—अरे उसे खा गये? वेवकूफ वह प्रसाद थोड़े था? वह तो पूजा के लिये था, अब से न खाना समझे? उसे सामने “कलस” पर छोड़ते जाना।

×

×

×

×

यह घटना मेरे आज के इस जीवन से, लगभग १५।२० साल पहले की है। पिता-माता अपने-अपने अरमान पूरे कर चले गये वहाँ, जहाँ से न तो कोई फिर लौटकर ही आता है और न पत्र व्यवहार रखने के लिये किसी डाकखाने का ही प्रबन्ध है। उनके उस अरमान का परिणाम अब मुझे चारों हाथ भोगना पड़ रहा है। घर का सारा आधिपत्य हमारी पत्नी जी महामहोदया के हाथों है, और मैं एक अहो-रात खटनेवाला कोल्हू का बैल हूँ, पर हायरी किस्मत! मेरी हस्ती, मेरा मान, मेरी प्रतिष्ठा उस अभागे कोल्हू के बैल के भी बराबर नहीं है। पाँच पतियों की प्राणाधार पत्नी और भारत की सम्राज्ञी होकर भी द्रापदी बेचारी में उतनी अँकड़, ऐसी ऐंठ न होगी, जितना हमारी देवीजी काठ के दो बाक्सों को देख, फूलकर गोबर दुई जा रही थीं। रोज ही नये आर्डर! रोज ही नये फर्मान!! बापरे इतने “अर्डरिनेन्स” दिज एक्सीलेन्सी लेट माई लाल-बिल्ली टङ्क बहादुर ने भी न निकाला होगा। मैं क्या, किसी भी बुद्धिमान को उनके अद्भुत खोपड़े का पता नहीं लग सकता। वे तो भारत की “वायसराइन” और “होम मेम्बर-राइन” बनाने के लायक हैं। जो-जो जौहर, जैसी-जैसी करामात-पालटिक्स उनकी खोपड़ी दिखलाती है कि बड़े-बड़े दिग्गज पॉलीटिशियन सर धुनें। हम तो उनकी इस घोर महायोग्यता के सर से पाँच तक कायल हैं।

×

×

×

×

हमारी एक बहिन थी, बड़ी गरीब मिजाज, बड़ी नम्र, बड़ी



दयालु और सहिष्णु। मेरी महाराणी को इस गरीब अनाथिनी से “इन्द्र-वलि” का बैर था। आप उसकी सूरत तक देखने को तैयार नहीं। मगर मैं उसे कैसे छोड़ता, वह मेरी बहन थी, सहोदरा थी और दुखी थी। उसके बाप-माँ न थे, अब तो पिता या माता उस गरीबिन के लिये केवल मात्र एक मैं ही था। उसने कई बार चिड़ियाँ लिखीं—“भईया मुझे लिवा चलो।” मगर मैं श्रीमती के भय प्रपञ्च-वश बराबर टालता रहा। पर कब तक टालता, एक दिन उसकी आर्त्त पुकार दिला छू गई। उठा, और चटपट उसे लिये दिये घर चला आया। श्रीमतीजी उस समय तो कुछ न बोलीं, पर दिन-दिन उनकी नाक पावरोटी की नाई फूलती जा रही थी। हमेशा वह प्रलय घनघटा की भाँति गुरु गम्भीर रहने लगीं। इसपर मेरी उस सरल हृदया बहन ने एक दिन उनके सामने ही मुझसे सोने के ‘कर्णफूल’ की याचना कर उस प्रचंड मेघमाला में एक तूफान पैदा कर दिया। वे झुककर कर अपनी गोद के बच्चे पर अपना सारा गुस्सा उतारते हुये उठ गईं। मैं तो ताड़ गया। चर्खी में आग बेसौके लगी, परन्तु इस बात की खबर मेरी उस सरला बहन को क्या थी? वह अपनी रट रटती ही रही। मैंने उसे संकेत किया—अभी चुप रह, तू जो चाहती है वही होगा।

+ + + +

“क्यों बहन को सोने का “कर्णफूल” दोगे? देखिये, जो आता है मेरे घर वह हाथ पसारें ही आता है, जैसे मेरे ही घर में सारे संसार की सम्पत्ति गड़ी है। भला इनकी माँग तो सुनी। कर्णफूल, और वह भी सोने का? वापरे वाप! वह डेढ़ पौने दो सौ रुपये की चपत! कितनी थी मेरे घर किसी के आने-जाने की जरूरत नहीं पर, एँठे हुये गये आँर कपार पर गड़ बत्ता लाकर रख दी! अब लाओ सोने का कर्णफूल, वो बहन को।” रात में जब हम महाराणी जी के

ही कमरे में पड़े थे, वे बड़बड़ा गईं। मैं उन्हें तोष देता बोला—  
“अरे मेरी इतनी औकात कहाँ जो किसी को चाँदी सोने के गहने देता चलूँ, यहाँ तो ताँवे-कोंसे तक का ठिकाना नहीं है। वहन है माँगना उसका काम है, पर उसके माँगने से मैं दे थोड़े ही दूँगा ? आप शान्तिपूर्वक विलकुल निश्चिन्त हो सोयें, आपके घर का एक ठीकरा तक टस से मस न होगा।”

—“हाँ, वही आपको कह दिया कि हमारी इतनी बूत नहीं जो हम किसी को सोना-चाँदी देती फिरें। अभी खुद हमें अपनी दो-दो लड़कियों का व्याह करना है। आप तो औलिया फकीर हैं, शायद भोका आ गया और जैसे जोश में जाकर यह बवाल उठा लाये, वैसे ही गहनों को भी उठाकर न दें।”

मैं उन्हें ढाढ़स देता हुआ बोला—अजी राम कहो, क्या तुमने मुझे कोई विलकुल घास छीलनेवाला ही समझ रखा है ? क्या मुझे अपने भले-बुरे का ज्ञान नहीं ? लिवा तो मैं इसलिये लाया कि वहन है, उसके बाप-माँ नहीं हैं, यह गाँव उसकी जन्मभूमि है, चलो मास-दो मास रहेगी, जरा घूम-फिर कर अपनी सखी सहेलियों से भेंट मुलाकात करके फिर, अपने घर चली जायगी। न बुलाने से गाँववाले भी तो निन्दा करेंगे। वे कुछ नमी से बोलीं—खैर लिवा लाये तो अच्छा ही किया, पर कुछ दे न डालना वहिन के प्रेम में लतावले होकर, नहीं तो मुझे जानते हो न, फिर नाक पकड़ के न रुला मारा तो कहना ? मैं लगभग रही हूँ आज बड़ी मीठी-मीठी बातें कर रहे हो। उन खुशामदी छाँव ननं वालों की तह में जो घोखा-घड़ी काम कर रही है, यह न समझना मैं उसे नहीं भौंरती। अजी ऐसा गोबर-गनेश मैं रहती तो जैसे तुम्हारे लच्छन हैं, आज घर पेट अन्न भी मुहल होता।

मैं उनका समर्थन करता हुआ बोला—भला हमें कौन भुजुवा

सन्देह करेगा, आप हमारे घर की साक्षात् लक्ष्मी हैं, और बुद्धि का तो सारा भंडार ही ब्रह्माजी ने आपके दिमाग में ठूस दिया है। मैं तो आपको “बुद्धिराशि सकलगुण सदन” का अवतार ही समझता हूँ। मेरा ख्याल है यदि आप मुल्क हिन्दुस्तान की “लाटिन” बना दी जातीं तो यह सारे असहयोग-फसहयोग, सत्याग्रह का बवाल क्षणों में, चुटिक्यों पर आप उड़ा देतीं।”

—देखो, मुझे छेड़ो मत, मेरा दिमाग अभी वुस्स्त नहीं है, जब से “कर्णफूल” की बात मैंने सुनी है तभी से दिमाग में जैसे आग लगी है, उसे उकसा-उकसा कर लहराओ मत। तुम्हारी यह तफरीह मुझे तनक भी नहीं सुहाती। भले आदमी की तरह कल अपने बहनोई को पत्र लिख दो, वे आकर अपनी लुगाई को लिया जायें वना वह काण्ड मचाऊँगी कि दाना-पानी भी मुहाल हो जायगा। मैंने मजाक के ही लेहजों में कहा—अगर आग कुछ ज्यादा लहर गई हो तो आप कृपाकर “जल-कल” के पास चलने का कष्ट करें और न बुझ जायगी, और शायद और भी अधिक उग्र हो गई हो और तकलीफ बहुत ज्यादा हो तो कहिये “दमकल” वालों को खबर करूँ।

“न मानोगे तुम ?” वे झुझलाकर ऊबती सी बोली—“कहती हूँ तुम्हारे ये मजाक मुझे अच्छे नहीं लगते। कहो कल चिट्ठी लिखते हो ?”

—हाँ, हाँ, जरूर-जरूर, भला आपकी हुक्म-अदूली !

—“अच्छा आज खूब तफरीह के मजे उठा लो फिर तो रोना ही है तुम्हें !”

—फिर क्या, यदि आप मेरे रोने पर ही प्रसन्न हैं तो कहिये अभी बाढ़ें मार मार कर रो लूँ, क्योंकि आप मेरे घर की लक्ष्मी हैं, आप जिसमें प्रसन्न-सन्तुष्ट रहें, उसे करना तो मेरा कर्तव्य ही है।

—अच्छा तुम मेरे कमरे से बाहर जाकर सोओ। बोलो जाते हो या मैं ही चली जाऊँ।

—“ना-ना-ना—” मैं तनिक बनावटी व्याकुलता से बोला—  
“आप क्यों कष्ट करेंगी, आपका यह आज्ञाकारी दास स्वयं जाता है।”

—“अच्छा-अच्छा खूब बना लो आज, पर इसे भूल न जाना।”  
मैं हँसता हुआ बाहर चला आया, और वे एक विकट डुङ्गार छोड़ती, प्रतिशोध भावना से व्याकुल-सी हो सो रहीं।

X      X      X      X

इस वार्तालाप के सप्ताह भर बाद ही, हमारी बहन अपनी ससुराल चली गई। मैंने स्वयं पत्र लिखकर बहनोई को बुलाया और बहन को विदा कर दिया। उसे ‘कर्णफूल’ इत्यादि कुछ न मिला। ओह! उस दिन हमारी महाराणी कितना प्रसन्न, कितना गद्गद् थीं जैसे उन्हें अयोध्या का राज्य मिला। वे मुझसे अब गुड़-चिऊँटे की तरह लिपट गईं उनके अनुराग और विश्वास का फाटक जो मेरे लिये अनन्त काल के हेतु बन्द था, बिल्कुल दो पट्टा, दो तरफ खुल गया। अब वे मुझे अपने प्राणों से भी अधिक प्यार तथा अपने से भी ज्यादा मुझपर विश्वास करने लगीं। मेरा मान बढ़ा, मेरी प्रतिष्ठा बढ़ी और सबसे खुशी की बात हुई कि अब मेरी भी गणना दुनियाँ के बुद्धिमान पुरुषों में होने लगी। बल्कि एक दिन तो मेरी गृह देवी जी महोदया ने बड़ी भावुकता एवं प्रसन्नतापूर्वक यहाँ तक कह डाला—“तुम दुनियाँ के गिने-चुने बुद्धिमान पुरुषों में हो।” धन्यभाग! “हम भी बुद्धिमान हैं, और संसार के गिने-गुने लोगों में—?” हमारे जीवन की यह सर्व-प्रथम सुषड़ी थी, जो उनके जीवन से मुझे यह बुद्धिजला की “सर्टिफिकेट” नसीब हुई। कृतज्ञता के महाभार से दवा-बिसा एक नेत्र आदमी की तरह मैंने उनकी इस उदारता की भूरि-भूरि प्रशंसा की, उनका आभार माना—“शहा! धन्य हैं आप, और महाधन्य है

आपका घोर उदार हृदय ? जो मुझ जैसे—दुनियाँ भर में एक ही गये वीते आदमी को “बुद्धिमान” की सनद सरफराज फरमाया । जय हो, आपकी सदा जय हो ।” मैंने हर तरह से उनके इस कृपा-प्रदान के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि समर्पित करना मुनासिब समझा, और करवद्ध हो झटपट एक वन्दना मैं गा उठा—

“जय आदि भवानी, सुर कल्याणी, सब गुन खानि ‘बामा’ जी ।”  
तोहि को सब ध्यावै, पार न पावै, जग गुन गावै “श्यामा” जी ॥  
तेरी माया, जगत रचाया, सब ही सुलाया “धामा” जी ।  
शिव ब्रह्मादिक, और इन्द्रादिक, जपते तुम्हारे नामा जी ॥  
जय जय जग देवी, सुर-नर सेवी, धन तुम्हारे “हृदामा” जी ।  
तुम भई दयाला, हुए निहाला, सफल भये सब “कामा” जी ॥”

वे प्रेम विभोर नेत्रों से मुझे निहारती हुई बोलीं—“तुम बड़े बालूनी हुए जा रहे हो जी !” फिर वे अपनी अण्डाकार आँखों से “सोम-रस” का भरा घड़ा उड़ेलते हुए रसोई घर में भाग गई ।

×                      ×                      ×                      ×

कुछ महीनों के बाद मैंने एक दिन उनसे कहा—क्या बताऊँ पौने चार सौ रुपये का एक सोने का “हार” सिर्फ डेढ़ सौ रुपये के लिये चला जा रहा है ।”

वे सो रही थीं । तमक कर उठीं और बड़ी अधीरतापूर्वक बोलीं—कैसा हार ? कहाँ है ? जो पौने चार सौ की चीज डेढ़ सौ रुपए में जा रही है ।

—यही बेचारे विनोद बाबू जो हमारे पड़ोसी हैं, उनका एक गाँव नीलाम पर चढ़ गया है, बेचारे गर्ज के मारे अपना बीबी के चार सौ० का हार डेढ़ सौ में बेच रहे हैं, कल हमसे भी कह रहे थे—“मिश्र जी तुम यह ले लो, खास “लेडला” कम्पनी का वैन्दार

किया हुआ माल है, अगर तुम्हारे यहाँ चीज रहेगी तो मुझे उतना अपसोस न होगा—”

“तब—तब—!! तुमने क्या कहा?”—महारानी जी सॉस रोके अवीरतापूर्वक बोल गई।

मैं बड़ी शान्ति से गम्भीर मुद्रा बनाये बोला—मैं क्या कहता, मेरे पास रुपए-पैसे थोड़े हैं—

—“तो—तो—तो—उन्होंने वह “हार” कहीं और जगह बँच दिया क्या?” वे फिर घबराई हुई आवाज में बोलीं।

“सो तो मुझे पता नहीं।”—मैं उसी प्रकार शान्त गम्भीर बने उत्तर देता गया।

—धन्य हो तुम ! तुम्हारी इसी बुद्धि के कारण कभी-कभी मुझे भिन्नक चढ़ आती है, मुहल्ले का माल इतने सस्ते में दूसरी जगह चला जाता है, पर तुम्हें उसे लेते पार नहीं लगता।

—भाई मेरे पास रुपए-पैसे हैं थोड़े, “सूत न कपास, जुलाहे से लट्टम-लट्टा” करने की मूर्खता कौन करने जाए।

—मुझसे भी तो कहते !

—हाँ, यह भूल मुझसे अलवत्ता हो गई।

—तो हार उनका बिक गया ?

—पता नहीं।

—मेहरबानी करके कल जरा सवेरे उठना और उनसे मिलना, यदि वह ‘हार’ न बिका हो तो उसे जाँच-समझ कर ले लेना, रुपए मैं दूँगी। ऐसी चीज हर समय न मिलती है न बनती है।

मैंने कहा—अच्छा !

पार ही बने उन्होंने मुझे जमा दिया। मैं विनोद बाबू के पास पहुँचा “हार” लिया और चला आया। श्रीमती “हार” देखकर घोंसो

उछल पड़ीं, फिर उन्होंने मेरी तारीफ की, टोकरो मुझे घन्यवाद दिया, फिर रुपए लाकर गिन दिये।

×                      ×                      ×                      ×

इस घटना के कुल डेढ़ महीने बाद। एक दिन एकाएक रात्रि में जब मेरी आँखें खुलीं तो देखता क्या हूँ, चार काली मूर्तियाँ नगोट कसे हाथों में नङ्गी तलवार लिये मेरे कम में खड़ी हैं और उस घोर अन्धकार में इनकी तलवारें चमक-चमक कर अपनी नृशंसता का परिचय दे रही हैं। मैं चीख पड़ा—“बाप रे—डा-डा-कू-कू ऊ-ऊ-ऊ” तबतक एक ने अपनी तलवार की नोक मेरे कण्ठ में छुलाते हुए कहा—चुप! बिलकुल चुप रहो !! एक शब्द भी निकाला कि तलवार को अपने कण्ठ के पार समझो।”

मैं भारे भय के चादर तानकर पड़ रहा कि फिर एक दूसरे ने मुझे झुकभोरते हुए कहा—“अब सोता क्यों है, क्या हम तेरे गुलाम बन-कर आये हैं, बता सब माल-माल कहीं है ? तुम्हारी बीबी कहीं है ?”

बीबी का नाम सुनते ही तो मेरे रोंगटे खड़े हो गये। बाप रे ये चाण्डाल बीबी का पता क्यों पूछ रहे हैं, क्या माल-मता के साथ उन्हें भी घसीट ले जाएँगे। आह ! जैसे मैं कट मरा, बन्नी विकलतापूर्वक दौड़कर उसके पैरों पर अपना माथा पटक कर दोनों दायाँ से उगरे पाँव पकड़े धोला—“दोहाई सरकार की, चाहे धन मात्र तू न मा सारें कपड़े-लत्ते हूँ पत्थर सब उठाकर ले जाओ, पर मेरी आबरू मत बिगाड़ो दादा। मेरी जोरू को न ले जाओ, हम ब्राह्मण हैं, बहुत असीस देंगे।” फिर मैं बलक बलक कर रोने लगा।

परन्तु ये विशाल हमारे धन-माल के साथ ही हमारी स्त्री और बच्चों को भी बगाँटे ले गये और दूतारी इन आँखों के सामने ही। मुझे आँसू के लज्जे से जीनकर मेरे मुख में कपड़े ढूस दिये। मैं भीतर ही भीतर “गो-गो” करता रहा, कुछ बस न चला।

सुबह कुछ लोग मेरे घर आये। मुझे खोला। रात की सारी दुर्घटनाएँ मैंने रो-रोकर उन्हें सुनाई। हाय ! हाय !! सारे घर में जैसे “भूत” लोट रहा था, जिसकी असह्य उदासीनता और व्यथामय सूनापन मेरे कलेजे में जैसे भाले घुसेड़ रहा था। दौड़ता हुआ मैं अपनी पत्नी के शयनगृह में गया और वहाँ का दृश्य देखकर मैं छाती पीट-पीट कर रोने-चिल्लाने लगा। रूपए और जेवरों के सारे बक्स खुले पड़े थे, उसमें एक छुदाम तक न था। हाँ नीचे जमीन में वह विनोद बाबू वाला “हार” गिरा था, जिसमें कागज़ का एक पुर्जा बाँधा था। दौड़कर मैंने उसे उठा लिया, चटपट उस पुर्जे को खोलकर पढ़ा, लिखा था—“तुम्हारी परवरिश के लिये हम तुम्हारा यह पौने चार सौ का हार छोड़े जा रहे हैं, इसी को बेच-बेच कर खाना। शमशेर-जंग, डाकू सरदार।”

कुछ लोग मुझे भीतर से बाहर ओसारे में लाकर बोले—अब औरतों की तरह सिर्फ रोने से काम नहीं चलेगा, जो मुनासिब कार्रवाई हो सो करो, अभी ज्यादा वक्त नहीं गया है, डाकू तुरंत पड़क जाएँगे।

मैं तो मारे शोक के पागल हो गया था। बोला—कहिंये मैं क्या करूँ, ऐसी विपत्ति मुझपर कभी नहीं आई थी। मेरी ताँ राक़ हन समथ कुछ भी काम नहीं करती।

वे लोग—अक़ की क्या बात है, थाने जाकर ‘रपट’ लिखाओ। देश-विदेश में हुलिया कराओ, पुलिस आप ही सब ढूँढ़ निकालेगी।

—एँ पुलिस हँल निकालेगी ? आपकी ऐसा विश्वास है ?” वही आर्त्तवाणी में, अक्षरेतापूर्वक गँजे डूझा—

—हाँ, हाँ, पहले तुम ‘रपट’ तो लिखाओ !

जब हम थाने पहुँचने का तैयार हुए तो विनोद बाबू ने कहा—  
याने चलने से पहले भला हाँ तुम अपनी पत्नी का पता एक बार उनके पीछर में भी लग लो। तुम जानते ही हो नह किशनी यड़ी



मयाविनी हैं। हमें जहाँ तक मालूम है तुम्हारे “हार” वाले कौशल को वे जान गई हैं और तुमसे उसका बुरी तरह बदला लेने की प्रेरणा से ही उन्होंने इतना बड़ा विराट प्रपंच रचा है।

मैंने कहा—नहीं विनोद बाबू ! “हार” वाली बात उन्हें कुछ भी मालूम नहीं है, और अगर हाँ भी तो वे ऐसा विकट पाखंड कभी नहीं रच सकतीं जिससे जान-माल दोनों का खतरा हो।

विनोद बाबू जोर देकर बोले—“उनके लिये कुछ असम्भव मत समझो, मैं जो कहता हूँ उसमें बिना अपनी बुद्धि भिड़ाने मान जाओ।

मैं विनोद बाबू की इस दृढ़ता पर कुछ शान्त-सा बोला—क्यों आपको इस विषय में कुछ जानकारी है ?

वे बोले—अब मुझसे सारी बातें खोलवाकर मुझे भी बदनाम मत कराओ, तुम मित्र हो, तुम्हारी बेकली मुझसे देखी न गई, तुम्हें जरा हिन्ट ( प्रशारा ) दे दिया, फिर जो जी में आये करो।

अब जरा मेरे दम में दम आया, उनके दोनों हाथों को पकड़कर मैंने बड़ी व्याकुलता से पूछा—अच्छा इतना तो बताइये, इस समय वे कहाँ मिलेंगी।

वे—यह सब मैं कुछ नहीं जानता, मुझे तज्ञ न करो, मैंने कह दिया, पहले उन्हें उनके मायके में ढूँढ़ लो, अगर वह वहाँ न मिलें तो “रिपोर्ट” करते रहना।

मैं—तो मैं जाऊँ ?

वे—अवश्य ! पर सावधान भाई, हमारा जिक्र न करना।

X X X X

उसी दिन शाम को मैं अपनी सुसराल पहुँचा। बाहरी बैठक में नमुर आँ बंटे लैमी दर्जक रहे थे। ताल पर एक “कुप्पी” जल रही

थी। मैंने उनके चरण छूकर प्रणाम किया। वे बोले—कौन ? बाबू।  
कहो कैसे चले, प्रसन्न तो हो ?

—हाँ, सब आनन्द ही है, आपकी कृपा से।” मैंने यहाँ सारी  
बातें चटपट खोल देना उचित नहीं समझा। सोचा, जब वह यहीं पर  
हैं तो सब बातें बताकर घेबकूफ कौन बने।

रात्रि में भोजन करने भीतर गया। मेरी सास बैठी थी, साली  
थाल परोस रही थीं और मैं आतुरतापूर्वक चारों ओर आँखें फाड़-  
फाड़कर देख रहा था। परन्तु मुझे कहीं भी उनके आगमन का  
पता तक न मिला। और तो और, तनिक मेरे लड़के भी तो  
शोर-गुल मचाते ! मगर कहीं किसी का कुछ भी पता नहीं। अब  
धीरज ने मेरा साथ छोड़ दिया और मैं एकाएक चिल्लाकर रो  
पड़ा।—“हाँ-हाँ !! क्या है ? क्या है ?? क्यों ! क्यों !! बाबू, क्यों  
सहसा रो पड़े ?” सब के सब बोल उठे, बाहर से ससुर जी भी दौड़े  
आये।—“क्या बात है ! क्या बात है !!” की पुकार पर पुकार मचने  
लगी। आखिर मैं रोता-रोता अपनी सारी कष्ट कथा गा गया। ससुर  
का तो बाहर चले गये और सास जी भी गुम-सुम हो बनी बैठी रहीं,  
किन्तु हमारी साली गड़वा अपनी हँसी न रोक सकीं। वे हँसती-हँसती  
बालों-तों शिर रंगते क्यों हैं ? मजा कीजिए, बूढ़ी-हूँटी। बसों बालों  
बालों का टाक उठा ले गये, अच्छा ही किया आपको एक जंभट से  
उबार लिया। अब अपनी जवान बहन को घर में लाइये और बट बने  
चार सौ रुपए वाला “हार” पहनाकर रात दिन टमकी शोभा निरखते  
रहिये। आपको तो अपनी जोरू से नहीं बहन से काम है।

अब सारी बातें मेरी समझ में आ गईं। जाँचो प्रयत्न रखें यदि  
न। चिनोव बाबू का कदना सब सब निकला। बाप रे बाप ! इतना  
पचशब्द-प्रयत्न ! ऐसी अगम अचानक भावा ?

—“चालीस-चालीस लाख, बीबी के लिये इतना बेहान मत

बनिये।” मेरा हाथ पकड़कर अपनी ओर खींचती हुई मेरी साली साहेबा ने कहा।

× × × ×

रात्रि में जब मैं अपनी महाराणी के शयनागार में पहुँचा तो वे तमाचे की तरह एक पोस्टकार्ड मेरे मुँह पर फँकती हुई बोली—  
“तुम्हारी यह करतूत ! यह माया ! और हमों से ? कहो अपने प्रपञ्च का कैसा स्वाद मिला !

मैंने देखा वह पोस्टकार्ड मेरी भोली बहन का भेजा हुआ था जिसमें उसने लिखा था—“भइया जी को मालूम कि आपका भेजा हुआ एक जोड़ा सोने का “कराफूल” मिला, मैं बहुत प्रसन्न हुई। भगवान आपको दूध-पूत से बनाए रखें।”

मेरे पत्र पढ़ने के बाद उन्होंने कहा—मुझे पीतल का “हार” देकर मेरे १५०) रु० ठग ले गये और उसी रु० का बहन को सोने का कराफूल पठा दिया ! बाहरी तुम्हारी माया ! जिस दिन यह चिड़ी मिली मैं उसी दिन विनोद बाबू के घर गई, उनकी स्त्री से मिली और उन्होंने तुम्हारी सारी कलाई खोल दी। फिर नैहर से अपने नौकरों को बुलावाया, उन्हें विनोद बाबू के ही घर ठहराया और इसके बाद जो हुआ उसके फल भोग ही चुके हो। कहाँ अब फिर भी फरेब करने का हौसला रखते हो ? माया की माता, फरेब की बहन और प्रपञ्च की पण्डिता तो हम लोग हैं और जान (१) जनों के डरने लगे ! कहिये कैसा नाक पकड़ रोते रहे ! मैं जानती हूँ तुम्हें विनोद बाबू ने ही यहाँ भेजा होगा। मैंने उनकी स्त्री से कह भी दिया था, जब देखिएगा मामला सज़्जीन हुआ जा रहा है तो विनोद बाबू से जरा सज्जेत दिलवा दीजिएगा। कहिये अब मिजाज ठिकाने आया !

फिर खेलिएगा चौसर हमसे ? भले आदमी की तरह हमारे (१५०) रु० लाकर अभी रख दो नहीं तो अभी और परीशान करूंगी ।

मैंने करवद्ध खड़े हाँकर कहा—

जमा, हे महादेवी जी, आपके इस दास ने जैसा किया वैसा पाया, अब फिर ऐसा कुकर्म करने के लिये कान पकड़ कर तौबा करता है । कहिये उठक-बैठक करूँ, अपने इस महा-अपराध के लिये । कृपे हम पाताल खोदकर भी श्री चरणों में समर्पित करेंगे । और हे देवी जी, अब ऐसा प्रपञ्च न रचिए नहीं तो आपका यह दुर्बल दास बिना मौत मर जाएगा । त्राहि देवी ! त्राहिमाम् ! त्राहिमाम् !! दास को अभय करो, हे प्रचण्ड महारानी !

—फिर मजाक ! अभी दिल पूरा न हुआ ? रोना भूल गये ?

—जी-जी-जी—नहीं-नहीं कहिये फिर रोने लग जाऊँ, पर रोने के बाद आदमी हँसता भी है, इसीलिये थोड़ा हँसने की मैंने कोशिश की ।

आओ-आओ बैठो, खड़े क्यों हों ? क्या कहूँ उस समय तो गुस्से में मैंने यह सब कर डाला फिर मुझे बड़ी दया आई । माफ़ करो ।

मैंने कहा—धन्य हैं आप, और धन्य हैं आपके प्रपञ्च !

